कामरूप कामाख्या

श्रीधरणीकान्त देव शर्म्मा

कामरूप कामाख्या

श्रीधरणीकान्त देव शर्म्मा

आसाम शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर महोदय द्वारा पुरस्कार (प्राइज)
और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत पुस्तक ।

कामरूप कामाख्या

श्री धरणीकान्त देव शर्म्मा पण्डा, बड़-पुजारी
कर्तृक
संगृहीत और प्रकाशित

पो० आ०—कामाख्या
जिला—कामरूप (आसाम)

द्वितीय संस्करण
विजया दशमी संवत् २०१६
ई० सन् १९५९

 [दक्षिणा—१॥)

* ॐ श्रीगुरवे नमः *

ग्रन्थ परिचय

मैं १९१८ ई० के अप्रिल महीने में पहली बार आसाम आया। माता कामाख्या के दर्शन के निमित्त कामाख्या पहाड़ पर जाकर श्रीयुक्त कालीकान्त शर्म्मा के घर ठहरा। आप आदि पुजारी पंचगोत्रीय ब्राह्मणों में एक के वंशज हैं। मैं इनके सौजन्य, आदर यत्न और आतिथ्य को देख कर अति मुग्ध हुआ। इस ग्रन्थ के लेखक श्रीमान धरणी कान्त, इन्हीं कालीकान्त शर्म्मा के पुत्र हैं। उस समय इनको मैंने एक शिशु रूप में देखा था।

कालक्रम से कामाख्या के विषय में एक ऐतिहाकि विवरण जानने की उत्कंठा हुई कई एक पुस्तकें भी पढ़ी, परन्तु उनसे कुछ विशेष ज्ञातव्य हासिल नहीं हुआ। इस तरह मेरी आकांक्षा अधूरी ही रही। तत्पश्चात् कई वष बीत गये, परन्तु इस विषय सम्बंधी कोई दूसरी पुस्तक हमने नहीं देखी। कुछ दिन पूर्व लेखक ने मुझे स्वहस्त लिखित एक प्रबंध पढ़ने के लिये दिया। मैंने उसे पढ़ा और मेरी उत्कण्ठा तथा तज्जनित्र सभी जिज्ञासाओं का निवारण हुआ। अतः मैंने लेखक को उसे प्रकाशित करने के लिये अनुरोध किया।

लेखक ने बहुत दिनों के अक्लांत परिश्रम से कामाख्या विषय-ऐतिहासिक और पौराणिक वृत्तांत संग्रह कर इस पुस्तक

को एक अपूर्व प्रमाणिक ग्रन्थ में परिणत कर दिया है। कामरूप अंचल में अभी तक जितने शिला लेख और ताम्रलिपियां पाई गई हैं; उन सब का यथासम्भव इस पुस्तक में सन्निवेश है। इससे इस पुस्तक का गौरव और भी बढ़ गया है। सम्पूर्ण आसाम के प्राचीन इतिहास की भी कुछ कुछ झलक इस पुस्तक में पाई जाती है।

प्रति वर्ष बहुत दूर दूर से यात्री गण कामाख्या दर्शन के निमित्त यहां आते हैं। उन लोगों की सुविधा के लिये, कामाख्या पर्वत और पार्श्ववर्त्ती अंचल में जो सब तीर्थस्थान अभी भी वर्त्तमान हैं, उनका परिचय, तथा वहां यात्रियों का कर्त्तव्य इत्यादि के विषय में यह पुस्तक उनकी सहायता करेगी, इसमें सन्देह नहीं।

प्रसिद्ध स्थानों के इसमें चित्र देने के लिये मैंने लेखक को अनुरोध किया है। उनकी भी यही इच्छा है। उन्होंने बहुत यत्न कर इसमें कुछ आवश्यक चित्र दिये हैं। मैं आशीर्वाद देता हूं कि लेखक दीर्घजीवी हो तथा अधिकाधिक अनुसन्धान कर सर्व साधारण के समक्ष अज्ञात तत्वों का प्रकाशन करें।

कालीपुर आश्रम
कामाख्या
दौल पूर्णिमा
चैत्र सन् १३५१।

स्वामी भूमानन्द।

प्रथम संस्करण पर सम्मतियां

हिन्दी के सुप्रसिद्ध दैनिक सन्मार्ग की सम्मति   १७-१-५४

लेखक—श्री धरणी कान्त देब शर्मा पण्डा बड़-पुजारी।

प्राप्ति स्थान ग्रन्थकार, पो० आ० कामाख्या, जिला-कामरूप, (२) पुस्तक भंडार, फैंसी बाजार, गौहाटी, (३) लायर्स बुक स्टाल, पान बाजार (आसाम) मूल्य १॥)

१२५ पृष्टकी प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदयने कामरूप कामाख्या तीर्थ स्थानका खोजपूर्ण चित्र अंकित किया है। बिषय ज्ञातव्य एवं रुचिकर है। कामरूप यों ही दिलचस्पीका एक स्थान रहा है। लेखक ने बड़ी मिहनतसे इस संबंबमें बहुत कुछ जानकारी लायक बातोंका संग्रह किया है।

कामरूप अंचलमें अब तक जितने भी शिला लेख और ताम्र लिपियां उपलब्ध है, उन सबोंका इसमें समावेश किया गया है।

कामरूपके अलाबा आसामके इतिहास पर भी प्रकाश डाला गाया है।

हजारोंकी संख्यामें प्रति बर्ष तीर्थ यात्री कामरूप आते हैं। उनके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। इसके अलावा इतिहासके विद्यार्थियोंके लिए भी यह अध्ययन पूर्ण वस्तु प्रदान करेगी। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

जहां तक छपाई, सफाई आदि का प्रश्न है वह सन्तोषजनक है। चित्रों की मददसे पुस्तकको सुरुचिकर बनानेकी चेष्टा की गयी है।

15 th Sept. 1956

Dear Shri Sharma,

Please accept my sincere thanks for the book "Kamakhya" which you presented me..... ....your book is indeed an encyclopedia on Kamakhya shrine—the matter has been collected and described in very lucid fashion which I trust all Hindi readers and scholars will read it with keen interst. I congratulate you on this book and expect to see more books scientifically written on the subject with historical vieu on modern lines

I will certainly meet you whenever I will visit Gauhati. you are a rising star in the literary field. I wish you all success.

With kind regards.

your's sincerely
Lalji Shukla M. A.
Research Scholar
Dept. of Hindi
Allahabad University.

ORGANISER

July 13. 1959.

"KAMARUP KAMAKSHYA"

A Hindi book by—Sri Dharani kant dev Shrma Panda. Pages 125 Price Rs. 1-2-0, Available with the Author, P. O. Kamakshya, District—Kamrup, Assam.

This Hindi booklet dealing with the origin, greatness and the varied history of the famous shrine of "Kamakshya"—the presiding deity of the mysterious border province of Assam—is, as the author claims, one of the very few books available on the topic. The chief purpose of the booklet, as explained by the author himself, is to satisfy the curiosity of religious-minded readers as also distant pilgrims to this strange land of 'Kamrup' region, in regard to the holy shrine of Goddess Kamakshya and the surrounding region that abounds in beautiful idols carved on mountain rocks, about which various legends are current.

It can be said to the credit of the author that he has succeeded in making the book as authentic as it could possibly be. He has not only referred to ail the legends but has quoted

copiously from various Puranas like the Kalika Purana, Brihad-Dharma Purana, Devi Bhagawat etc. and has taken pains to piece together the remote and recent history of the famous shrine, taking support of all available inscriptions and other historical sources.

By describing the extent of the ancient Kamrup kingdom, by referring to the visit of Huen Tsang, the famous Chinese traveller, to this part in the 7th century, by describing the part played by the Maharajas of Cooch-Behar (Kamatapur in ancient times) as also Ahom the kings of Assam, in the resuscitation of the shrine and also by referring to the famous debate of Jagadguru Shankaracharya with the reputed scholar of the region, Sri Abhinav Gupta, resulting in the discomfiture of the latter, the author has doubtless enhanced the historical value of the book.

पांचजन्य

३ अगस्त १९५९

कामरूप कामाख्या— लेखक व प्रकाशक : श्री श्रीधरणीकांत देव शर्मा पण्डा बड़ पुजारी पो० आ० कामाख्या, जिला—कामरूप (असम) अनुवादक—श्रीलक्ष्मण तिवारी। पृष्ठ संख्या : ११८। मूल्य १=) रुपया।

कामाख्या तीर्थका कितना महात्म्य है यह सभी भारतीय जानते हैं। प्रस्तुत पुस्तकसे पूर्व स्वर्गीय विष्णुकांत देव शर्मा पण्डा एवं शिव कृष्णदेव शर्मा पण्डा कृत एवं प्रकाशित 'कामाख्या महात्म्य' के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी जिससे पुण्यमय कामाख्या तीर्थका सूत्रबद्ध शास्त्रीय परिचय प्राप्त हो सके। श्री श्रीधरणीकांत जी ने तंत्र, पुराण, जनश्रुतियां तथा 'कामाख्या महात्म्य' के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर निस्संदेह धर्म परायण जनताकी महान् सेवा की है। श्री तिवारीने पुस्तकका हिंदी अनुवाद कर हिंदीभाषियोंके लिये भी कामाख्या सम्बन्धी जानकारी सुलभ कर दी है। आशा है, पुस्तक का सर्वत्र स्वागत होगा।

भूमिका

महापुण्यमय कामाख्या-तीर्थ शास्त्रोक्त कामरूप राज्य के अन्तर्गत है। कामाख्या तीर्थ ही 'कामरूप' नामकरण का कारण है। इसीलिये देश देशान्तर में कामरूप कामाख्या (कामरू) कामाक्षा के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसका विवरण पुस्तक में देखें। कामरूप अति प्राचीन एवं वैचित्रमय देश है। तन्त्र, पुराण तथा इतिहासादि में भी विस्तृत रूप से उल्लेख पाया जाता है। कामरूप सम्बन्धी पौराणिक कहानियां आज भी भारत के कोने २ में प्रचलित है। जन साधारण की यह धारणा है कि यहाँ देवता और असूरों का राज्य था, तथा यहाँ के निवासी तन्त्र, मन्त्र, जादू, वशीकरण, मारण उच्चाटन, प्रभृति विद्या द्वारा लोगों को अनायास ही भेड़ा बना कर रख सकते हैं। यहां डाकिनीपाड़ा है; तथा यहां अभिचार क्रियादि भी होती हैं। ऐसी अनेक जनश्रुतियाँ देश विदेश में प्रचलित हैं। ये जनश्रुतियाँ निराधार तथा निर्मूल नहीं हैं। इस देश की तंत्रोक्त प्रक्रियामूलक पुरानी कहानियाँ सुन कर शरीर रोमांचित हो जाता है।

कालक्रम से यद्यपि उनका लोप होता जा रहा है, फिर भी जगह जगह प्राचीन पांडुलिपियों में नाना प्रकार के मन्त्र एवं उनकी प्रयोग विधियाँ पायी जाती हैं। परंतु साधनाभाव हेतु अब ये सभी निःसार हो गये हैं; फिर भी अब भी वशीकरण,

उच्चाटन प्रभृति मन्त्रों के प्रयोजक गुणी लोगों के प्रभाव देखने को मिलते हैं। उनकी प्रक्रिया प्रणाली देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता है। तीर्थ यात्री जो यहाँ आते है, उनके लिये इन सब के विषय में पूछना स्वभाविक है। केवल यही नहीं, यहाँ की प्राचीन ऐतिहासिक कहानी के विषय में भी यात्रीगण जिज्ञासा किया करते हैं। प्रस्तर निर्मित, पथ, घाट, मन्दिर विग्रहादि तथा शिल्पकला और अनेक खोदकर बनायी हुई मूर्तियाँ जगह जगह पहाड़ के चारों ओर अवस्थित होने के हेतु इन सब विषयों में यात्रीयों की जिज्ञासा जागरित हुए बिना नहीं रहती। परन्तु दुःख की बात है कि इस विषय सम्बन्धी किसी अन्य ग्रन्थके अभावमें धर्मपरायण यात्रीगण अनेक विषयों से अज्ञ एवं हताश हो जाते हैं। इस प्रकार का एक भी ग्रन्थ न रहने पर, जनश्रुतियां तथा प्राचीन पान्डुलिपियों से जो कुछ भी थोड़ा पता चलता है, उनका भी कालक्रम से लोप होजाना सम्भव है। अनेक पान्डुलीपियां जीर्ण अवस्था में पायी जाती हैं। आगे यह भी सुनने को मिलता है कि वे अग्नि देव के प्रकोप तथा धर्म विप्लवादि द्वारा नष्ठ हो गयी।

यह अभाव दूर करने के अभिप्राय से मैंने इसे लिखने का यत्न किया है। इसमें तन्त्र पुराणादि प्राचीन शास्त्रों के अतिरिक्त मैंने यहां की जनश्रुतियों से भी जो कुछ अवगत किया है उसे जनसाधारण के सम्मुख उपस्थित करने का प्रयास किया है। पुण्यात्मा स्वर्गीय विष्णुकान्त देव शर्म्मा पण्डा एवं शिवकृष्ण देव शर्म्मा पण्डा कृत एवं सर्व प्रथम प्रकाशित

'कामाख्या महात्म्य' के अतिरिक्त अभी तक कोई उल्लेखनीय और उच्चस्तर की पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन में उक्त पुस्तक से प्रचुर सहायता मिली हैं जिसके लिये मैं उनका आभारी हूं।

इसके प्रकाशन का एक मात्र उद्देश्य है कि धर्मपरायण पाठक गण इस तीर्थ का महात्म्य एवं विवरणादि सहज ही में जान सकें, तथा चतुर्दिक देवियों का महात्म्य एवं यहां की कहानी प्रचारित हो इसीलिए ही इस ग्रन्थ प्रकाशन का प्रयास किया है। पुस्तकमें अनेक भूलें हो सकती हैं। इस लिए सारग्राही पाठकगण असंतोष भाव प्रकाशित न करें। आलोचित विषय एवं घटनावली सम्बन्धी तथ्य वा प्रमाणादि सम्बन्धी किंवा, प्रस्तरलिपि, ताम्रलिपि वा पांडुलिपि विषयक, किसी को कोई अनुसन्धानादि यदि ज्ञात हो तो कृपा पूर्वक लेखकको सूचित करें। उसे आंतरिक कृतज्ञता के साथ अंगीकार कर अगले संस्करण में समाविष्ट करने की चेष्टा की जायेगी।

कामाख्या पर्वत के पूर्व पार्श्व में अवस्थित सुप्रसिद्ध कालीपुर आश्रम के गोलोकवासी आचार्य परम श्रद्धास्पद श्रीमद्स्वामी भूमानन्द परमाहंस ने मुझे इस पुस्तकके बंगला संस्करणके प्रकाशन में प्रोत्साहन दिया है तथा उपदेश दान कर कृतार्थ किया है। उनके सहृदयशिष्य, शिक्षक श्रीयुत् प्रबोध चन्द्र सिकदार बी० ए० महाशय ने संगृहीत तथ्यों के विषय में मुझे सहायता प्रदान कर इस पुस्तक के प्रकाशन का मार्ग ओर भी सहज कर दिया है। उनके प्रति मैं अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

बंगला के बाद इस पुस्तक का असमिया संस्करण भी निकल चुका हैं। माता कामाख्या की महिमा का प्रचार हिन्दी भाषा-भाषी जनसमूह में करने की भावना से इसका हिन्दी में होना अत्यन्त वांछनीय था। उपरोक्त स्वामी जी की सूक्ष्म दृष्टि से यह अभाव भी नहीं बच सका और इसकी सुव्यवस्था भी उन्होंने कर दी, जिसके लिये उपरोक्त महानुभावों तथा माननीय श्रीयुत राजेश्वरी नन्दन तिवारी जी के सुपुत्र लक्ष्मण तिवारी तथा सहकारी श्री मोहन सिंह जी को में अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं, क्योंकि इन लोगों ने अपनो सेवा द्वारा मुझे कृतार्थ किया है।

श्रीयुत शंकरलाल शर्मा एडवोकेट, महोदय ने अपनेव्यस्त कार्यक्रम के बीच में से बहुमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक की पोंडुलिपि को देख दिया है। इसके लिये मै उनको अपना आंतरिक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता। ग्रन्थकार

दो शब्द

कामाख्या तीर्थ सम्बन्धी जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिये वर्त्तमान समय में हिन्दी भाषा में कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है। इसी अभाव की पूर्त्ति की प्रेरणा से और ग्रन्थकार के अनुरोध से यह हिन्दी अनुवाद आज प्रस्तुत हुआ है। आशा है हिन्दी भाषा भाषी विद्वज्जन इसे स्वीकार करंगे।

मूल ग्रन्थ आसामी और बंगला भाषाओं में बड़े प्रभाव-

शाली ढंग से लिखा गया है। ऐसी अनुमतियां बहुतेरे विद्वानों की हुई हैं। पर हिन्दी संस्करण में इसका सम्पादन कैसा हुआ है इसका विवेचन सहृदय पाठकों की गुणग्राहकता पर निर्भर है।

क्षीर नीर विवरण गति हंसा।

पाण्डु।
नवम्बर १६५२ ई०

हिंदी अनुवादक—
लक्ष्मण तिवारी

द्वितीय संस्करण की विज्ञप्ति

जगतमाता कामाख्या देवी की कृपा और सहृदय भक्तों एवं पाठकों के आग्रह से इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पाठकों के आग्रह को ध्यान में रखते हुए इस संस्करण में कामरूप का पौराणिक विवरण एवं माहात्म्य, इकावन महापीठों एवं छबीस उपपीठों की तालिका व नव प्राप्त शिला लेख व दो नये चित्र और दिये गये हैं। इस संशोधित व परिवर्धित संस्करण में प्रथम संस्करण की अपेक्षा प्रायः पचास पृष्ठ (५०) अधिक हुए हैं। कागज व छपाई खर्च में वृद्धि होने के कारण बाध्य होकर इस पुस्तक का मूल्य बढ़ाना पड़ा है। पाठकों एवं भक्त वृंदों को इस पुस्तक से जरा भी लाभ हुआ तो मैं अपना सारा परिश्रम सार्थक समझूँगा।

—ग्रन्थकार

विषय-सूची

सतीके देहत्याग पर क्रुद्ध महादेव

कामरूप कामाख्या

कामाख्या तीर्थ उत्पत्ति वृत्तान्त

हमारी पुण्य भारत भूमि में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ स्थान ऐसे सुरम्य स्थानों पर अवस्थित है कि वहाँ जाने मात्र से ही तन मन पवित्र हो नव जीवन का सञ्चार होने लगता है। इसी से पूज्य शिरोमणि हमलोगों के ऋषियों ने मोहनिद्रा पर्य्यभिभूत संसार के पाप ताप, ज्वाला यन्त्रणादि के द्वारा जर्जरित हृदय को शीतल करने प्राकृत उपाय स्वरूप देश देशान्तर में तीर्थ पर्यटन, देव देवियों का दर्शन तथा उनकी पूजा का विधान बनाया है। तीर्थस्थान हिन्दुओं के धर्माचरण के आदि पीठ स्थान हैं। एक तरह से तीर्थ स्थानों को प्राकृतिक सौन्दर्य का क्रीड़ा क्षेत्र भी कहा जाता है। ऐसे स्थान में जाने से स्वतः ही भगवत भक्तिभाव जागृत होते हैं इस भारतवर्ष में असंख्य तीर्थ विद्यमान है। रायगुणाकर भारतचन्द्र ने कहा है :– (भव संसार भित्तरे भव भवानी बिहरे) अर्थात कवि के मतानुसार

सम्पूर्ण संसार में शिव और शक्ति विराजमान है। तथा कालिका पुराण, चूड़ामणि तंत्र, शिव चरित, आदि ग्रंथों में इकावन महा पीठों और छब्बीस उप पीठों का वर्णन इस प्रकार मिलता है। भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र से सती का शरीर छिन्न, विच्छिन्न होकर कुल ७७ पीठों में पतन का सूक्ष्म मतलब यह है कि इन्हीं समस्त स्थानों से शक्ति का आविर्भाव हुआ है। सती देवी के छिन्न विच्छिन्न अंगों में से "महा मुद्रा" अर्थात "योनि" अंग कामरूप में गिरा। इसलिए सब देवी पीठों की अधिष्ठात्री देवी तथा भैरवी कामख्या देवी या नील पार्वती है। इस भैरवी देवी के संलग्न भैरव उमानन्द है। इकावन महा पीठों में कामख्या महा पीठ सर्वश्रेष्ठ शक्ति पीठ माना गया है। इसीलिए प्रति वर्ष, असंख्य साधक, भक्त, हृदय की अटूट भक्ति से कामख्या के दर्शन कर अपने को कृत कृत्य मानते हैं। परिशिष्ठ में इकावन महा पीठों और २६ उपपीठों की तालिका दी गई है!

भगवान विष्णु के चक्र से सती के देह के छिन्न विच्छिन्न होने की पौराणिक कहानी का यही स्वरूप है। प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति की सती नाम की कन्या के साथ देवादिदेव महादेव शिव का विवाह हुआ था! एक बार स्वर्ग की देवसभा में राजा दक्ष शिव द्वारा संवर्द्धना न पानेपर अपने को अपमानित समझ शिव को देवताओं के समक्ष

हेय साबित करने के लिये एक शिव रहित यज्ञ की घोषणा की। दक्षराज ने देवर्षि नारद को शिव और पार्वती के अतिरिक्त सम्पूर्ण त्रिभुवन को निमन्त्रण देने का आदेश दिया। नारद ने उक्त आज्ञा का पालन किया। यथा समय यज्ञ आरम्भ हुआ। सती ने नारद जी के मुख से तथा लोगों के मुख से पिता के घर यज्ञ के अनुष्ठान का सम्वाद सुनकर स्वामी के निकट जा पिता के घर जाने की अनुमति मांगी। शिव ने पहले उन्हें मना किया। पर बारम्बार कातर प्रार्थना करने पर भी पति की अनुमति न पाकर वह क्रोध में अधीर होगयी। स्वामी की अनुमति के बिना जाना उचित नहीं, ऐसा सोच उसने दशमहाविद्याओं के रूप का प्रदर्शन कर महादेव पर ऐसा प्रभाव डाला कि आज्ञा देनी ही पड़ी। सती अनुमति पाकर परिषदगणों के साथ दक्ष प्रजापति के यज्ञ स्थल में उपस्थित हुई।

राजा दक्ष, बिना बुलाये ही सती को आई देख कर क्रुद्ध हो, शिव निन्दा करने लगे। असंख्य देव ऋषियों के समक्ष, यज्ञ स्थल में अविराम स्वामी की निन्दा श्रवण कर सती को भारी क्षोभ हुआ। पति निन्दा दग्ध हृदय को मुक्त करने के लिये योगाग्नि द्वारा सती ने अपने प्राण त्याग दिये।

यज्ञ स्थल पर सती के प्राण विसर्जन की कथा सुनते ही शिव अत्यन्त क्रुद्ध हो वीरभद्र आदि अनुचरों

सम्पूर्ण संसार में शिव और शक्ति विराजमान है। तथा कालिका पुराण, चूड़ामणि तंत्र, शिव चरित, आदि ग्रंथों में इकावन महा पीठों और छबीस उप पीठों का वर्णन इस प्रकार मिलता है। भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र से सती का शरीर छिन्न, विच्छिन्न होकर कुल ७७ पीठों में पतन का सूक्ष्म मतलब यह है कि इन्हीं समस्त स्थानों से शक्ति का आविर्भाव हुआ है। सती देवी के छिन्न विच्छिन्न अंगों में से "महा मुद्रा" अर्थात "योनि" अंग कामरूप में गिरा। इसलिए सब देवी पीठों की अधिष्ठात्री देवी तथा भैरवी कामख्या देवी या नील पार्वती है। इस भैरवी देवी के संलग्न भैरव उमानन्द है। इकावन महा पीठों में कामख्या महा पीठ सर्वश्रेष्ठ शक्ति पीठ माना गया है। इसीलिए प्रति वर्ष, असंख्य साधक, भक्त, हृदय की अटूट भक्ति से कामख्या के दर्शन कर अपने को कृत कृत्य मानते हैं। परिशिष्ठ में इकावन महा पीठों और २६ उपपीठों की तालिका दी गई है!

भगवान विष्णु के चक्र से सती के देह के छिन्न विच्छिन्न होने की पौराणिक कहानी का यही स्वरूप है। प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति की सती नाम की कन्या के साथ देवादिदेव महादेव शिव का विवाह हुआ था! एक बार स्वर्ग की देवसभा में राजा दक्ष शिव द्वारा संवर्द्धना न पानेपर अपने को अपमानित समझ शिव को देवताओं के समक्ष

हेय साबित करने के लिये एक शिव रहित यज्ञ की घोषणा की। दक्षराज ने देवर्षि नारद को शिव और पार्वती के अतिरिक्त सम्पूर्ण त्रिभुवन को निमन्त्रण देने का आदेश दिया। नारद ने उक्त आज्ञा का पालन किया। यथा समय यज्ञ आरम्भ हुआ। सती ने नारद जी के मुख से तथा लोगों के मुख से पिता के घर यज्ञ के अनुष्ठान का सम्वाद सुनकर स्वामी के निकट जा पिता के घर जाने की अनुमति मांगी। शिव ने पहले उन्हें मना किया। पर बारम्बार कातर प्रार्थना करने पर भी पति की अनुमति न पाकर वह क्रोध में अधीर होगयी। स्वामी की अनुमति के बिना जाना उचित नहीं, ऐसा सोच उसने दशमहाविद्याओं के रूप का प्रदर्शन कर महादेव पर ऐसा प्रभाव डाला कि आज्ञा देनी ही पड़ी। सती अनुमति पाकर परिषदगणों के साथ दक्ष प्रजापति के यज्ञ स्थल में उपस्थित हुई।

राजा दक्ष, बिना बुलाये ही सती को आई देख कर क्रुद्ध हो, शिव निन्दा करने लगे। असंख्य देव ऋषियों के समक्ष, यज्ञ स्थल में अविराम स्वामी की निन्दा श्रवण कर सती को भारी क्षोभ हुआ। पति निन्दा दग्ध हृदय को मुक्त करने के लिये योगाग्नि द्वारा सती ने अपने प्राण त्याग दिये।

यज्ञ स्थल पर सती के प्राण विसर्जन की कथा सुनते ही शिव अत्यन्त क्रुद्ध हो वीरभद्र आदि अनुचरों

को संग लेकर मखशाला में स्वयं आ उपस्थित हुए। वहां सती का मृत शरीर मखशाला में पड़ा देख शिव स्थिर नहीं रह सके। उन्होंने उसी समय अपने अनुचरों को दक्ष-प्रजापति का मुण्डच्छेदन करने तथा यज्ञ विध्वंश करने का आदेश दिया। अनुचरों ने आदेश पालन कर ईंट का जबाब पत्थर से दिया। चारों ओर यज्ञस्थल में हाहाकार मच गया तथा सभी भविष्य की चिन्ता में निमग्न हो गये। राजा दक्ष का मुण्डच्छेदन होने पर रानी ने अति शोकातुर हो शिव से दक्ष-प्रजापति की प्राण भिक्षा के लिये प्रार्थना की। आशुतोष स्तुति से प्रसन्न हो दक्ष को बकरे का मस्तक प्रदान कर पुनः जीवदान दिया। तदुपरान्त परिचारकों को कैलाश भेज, स्वयं सतीशव कन्धे पर ले उन्मत्त के सदृश त्रिभुवन भ्रमण करने लगे।

ब्रह्मादि देवगण शिव को इस अवस्था में देख त्रिभुवन विनाश की आशंका से भयभीत हो विष्णु के निकट गये। वहाँ सम्पूर्ण घटना का विवरण कह शिव का क्रोध उपशमन करने के लिये प्रार्थना की। शिव द्वारा गात्र स्पर्श के कारण सती का शव सड़ गल भी नहीं सकता था। अतः जगत पालक विष्णु ने सुदर्शन चक्र के द्वारा महादेव स्कन्ध अवस्थित सतीशव को धीरे धीरे खण्ड खण्ड कर ५१ इक्कावन भाग में विभक्त

किया। इस प्राचीन पवित्र भारतवर्ष में जिन जिन स्थानों में सती के छिन्न विच्छिन्न अंग गिरे थे, वे ही सब स्थान आज पवित्र महापीठों के नाम से पूजित होते हैं। पुराणों में भी यों कहा गया है :—

"विष्णु के सुदर्शन द्वारा छिन्न हो देवी के सब अवयव जिन जिन स्थानों में गिरे वे ही स्थान पुण्य भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुए।" कृपया परिशिष्ट (ख) में इकावन महापीठों की तालिका देखें।

त्रिनेत्र के स्कन्ध से सती शव छिन्न हो कहीं चरण, कहीं जानु कहीं जिह्वा, कहीं मुख, कहीं स्तन, कहीं वक्ष, कहीं बाहु, कहीं कर, पार्श्वद्वय और कहीं वस्ति इत्यादि गिरे। भारतवर्ष के जिन जिन स्थानों में ये अंग प्रत्यंग गिरे थे वे ही स्थान विश्व श्रेष्ठतम एवं पूज्यतम तीथ हुए। देवी उन्हीं सब स्थानों में नित्य अवस्थित रहती हैं अतएव उनका नाम सिद्धिपीठ पड़ा है। ये सब स्थान देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। ये स्थान महातीर्थ एवं इस भूतल पर मुक्तिक्षेत्र हैं। देवी के सम्पूर्ण अवयव भूमि पर गिरने के साथ साथ लोकानुग्रह हेतु पाषाण रूप में परिणत हुए :—

चक्रेण विष्णुना छिन्ना देव्या अवयवास्तु ते।
निपेतुर्धरणौ विप्र सा सा पुण्यतरा क्षितिः॥

क्वचिद् पादौ क्वचिज्जङ्घौ क्वचिज्जिह्वा क्वचिन्मुखम्।
क्वचिद् स्तनौ क्वचिद्वक्षः क्वचिद्बाहू क्वचिद् करैः॥
क्वचिद् पार्श्वौ क्वचिद्योनिः पपात शिव मस्तकात्।
यत्र यत्र सती देह भागाः पेतुः सुदर्शनात्॥
ते ते देशा धरा भागा महाभागाः किलाभवन्।
ते तु पुण्यतमा देशा नित्यां देव्या ह्यधिष्ठितः॥
सिद्धपीठाः समाख्याता देवानामपिदूर्लभाः।
महातीर्थानि तान्यासन् मुक्ति क्षेत्राणि भूतले॥
भूमौ पतितमात्रास्ते देव्या अवयवाः किल।
जग्मुः पाषाणतां शीघ्रं लोकानुग्रहहेतवे॥
[वृहद्धर्मपुराण। मध्यम खन्ड। दशम अध्याय। ३१-३५]

कामरूप कामख्या क्षेत्र में देवी का मुख्य योनि अंग गिरा; इसी से यह पीठ श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण तीर्थों का चूड़ामणि है। यह स्थान ब्रह्मपुत्र नद के तीर पर महा योगस्थल एवं विश्व कल्याणकारी है।

तीर्थं चूड़ामणिस्तत्र यत्र योनिः पपात ह।
तीरे ब्रह्मनदाख्यस्य महायोगस्थलं हि तत्॥
[वृहद्धर्मपुराण। मध्य खन्ड। दशम अध्याय। ३७]

जिस स्थान पर सती का योनिमण्डल (भगमण्डल) गिरा उसका नाम कुब्जिका पीठ है, तथा देवी भी उसी पीठ में विलीन रहा करती है। इसी पर्वत पर देवी का भगमण्डल

गिरकर नील वर्ण का हुआ था इसी हेतु यह पर्व्वत नीलाचल के नाम से भी विख्यात है।

तस्मिंस्तु कुब्जिकापीठे सत्यास्तद् योनिमण्डलम्।
पतितं तत्र सा देवी महामाया व्यलीयत्॥
लीनायां योगनिद्रायां मयि पर्व्वतरूपिणी।
स नीलवर्णः शैलोऽभूत पतिते योनिमण्डले॥
[कालिका पुराण। द्विषष्ठितम् अध्याय। ५८-५९]

कालिका पुराण में लिखा है कि सती का छिन्न विच्छिन्न योनि मण्डल पर्व्वत (नीलाचल) के ऊपर गिरकर पत्थरमय हो गया। उसी प्रस्तरमय योनि में कामाख्या देवी नित्य अवस्थान करती है। जो मनुष्य इस शिला को स्पर्श करते हैं वे अमरत्व को प्राप्त कर ब्रह्मलोक में निवास कर अंत में मोक्ष को प्राप्त होते हैं—

सत्यास्तु पतितं तत्र विशीर्ण योनिमण्डलम्।
शिलात्वमगमच्छैले कामाख्या तत्र संस्थिता॥
संस्पृश्य तां शिलां मर्त्यो ह्यमरत्वमवाप्नुयात्।
अमर्त्यो ब्रह्मसदनं ततस्थो मोक्षवाप्नुयात्॥
(कालिका पुराण। द्विषष्ठितम् अध्याय। ७७—७८)

यहाँ (नीलाचल पर) देवता पर्व्वत के रुप में अवस्थित हैं एवं अन्यान्य देवतागण उन्हीं पर्व्वतों के ऊपर निवास करते हैं। अधिक कहाँ तक कहा जाय उस

स्थान के अखिल भूभाग को ही ज्ञानीगण देवी का स्वरूप कहते हैं। यथार्थ में उक्त कामाख्यायोनिमण्डल की अपेक्षा प्रशस्ततम पुण्य स्थान अन्य कहीं नहीं हैं।

तत्रत्या देवताः सर्व्वा पर्व्वतात्मकताः गताः।
पर्व्वतेषु वसन्त्येव महन्त्यो देवता अपि ॥
तत्रत्या पृथिवी सर्व्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः।
नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ॥

(देवी-भागवत। ७म स्कन्ध। अष्टत्रिंशओऽध्याय। १७ १८)

कालिका पुराण के ६२ व अध्याय में कामाख्या विवरण में लिखा है कि पहले यह पर्व्वत एक सौ योजन ऊँचा था। महामाया का गुप्त अंग पतित होने पर पर्वत डगमगाने लगा। इसे क्रमशः पाताल गत होते देख, शिव ब्रह्मा और विष्णु तीनों देवों ने पर्व्वत के एक एक शृंग को धारण किया। इतने पर भी इन अति उच्च तीन शृगों को अधःगामी होते देख महामाया ने स्वयं उनके साथ मिलकर तीनों शृगों को आकर्षण शक्ति द्वारा धारण किया। इसी हेतु पर्व्वत की पहलेवाली ऊँचाई अब नहीं है। अब केवल एक कोश ऊँचा रह गया है।

शतं शतं योजनानां तुंगमासीद्गिरित्रयम्।
तदाक्रान्तं महादेव्या सर्व्वमेव ह्यधोगतम्॥

[कालिका पुराण। ६२:अध्याय ६५]

वही महादेवी अकेली ही निखिल विश्व की प्रकृति है। इसी हेतु इस जगन्माता को ब्रह्मा विष्णु और शिव धारण किये हुए है।

एका समस्तजगतां प्रकृतिः सा यतस्ततः।
ब्रह्मा विष्णुशिवैर्देवैर्धृतां सा जगतां प्रसूः ॥
[कालिकापुराण । ६२ अध्याय । ६६]

यही पर्व्वत ब्रह्मा, विष्णु और शिव पर्व्वत के नाम से तीनों शृगों में विभक्त है। पूर्व में जहाँ भुवनेश्वरी महापीठ है, इसे ब्रह्मपर्व्वत, मध्य भाग में जहाँ महामाया का पीठ है उसे शिवपर्व्वत एवं पश्चिम में जो पर्व्वत है, वह विष्णु या वराहपर्व्वत के नाम से विख्यात है। उस स्थान में एक "वराह कुण्ड" था, यद्यपि वह आजकल नहीं है तो भी लोगों के मन में इसकी प्राचीन स्मृति अभी भी जागृत है।

कामरूप का पौराणिक परिचय

पुराणादिक के मतानुसार रतिपति कामदेव शिव की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत हुए। पुनः उन्हीं की कृपा से उसने अपना पूर्व रूप यहीं प्राप्त किया अतः इस देश का नाम 'कामरूप' पड़ा।

शम्भूनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्राहात्।
तत्र रूपं यतः प्रापः कामरूपं ततोऽभवत्॥
[कालिका पुराण। इकावन अध्याय। ६७]

इसके अतिरिक्त यहाँ कामना के अनुरूप फल प्राप्त होता है, इसलिये इसका नाम 'कामरूप' पड़ा है, खास कर कलियुग में यह स्थान विशिष्ट रूप से जागृत है। यथा—

"कामरूपं महापीठं सर्व्वकामफलप्रदम्।
कलौ शीघ्रफलं देवी कामरूपे जपः स्मृतः॥
[कुब्जिका तन्त्र। सप्तम पटल]

इस विषय में निम्न लिखित श्लोक कामाख्या महात्म्य नामक पुस्तक में योगिनी तंत्र से उद्घृत है ऐसा लिखा गया है—

"कृते कर्मणि सिध्येत कामनाशु सुरेश्वरी।
ततो मर्त्याः कामरूपमिति रूपमकल्पयेत्"॥

अतएव साधक या भक्तगण जिस किसी भी कामना के लिये देवी की साधना करते हैं, देवी प्रशन्न हो, अति शीघ्र उनका मनोरथ पूर्ण करती हैं। कामरूप देश देवी क्षेत्र के नाम से भी तन्त्रों और पुराणों में वर्णित है। यथा—

कामरूपं देवीक्षेत्रं कुत्रापि तत् समं न च।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे॥
[योगिनीतन्त्र। षष्टपटल। १५ २

कामरूप देवी का क्षेत्र है। इसके समान अन्य दूसरा स्थान नहीं है। देवी और जगहों में बिरला हैं परन्तु कामरूप के घर घर में उनका निबास है। उसके अतरिक्त सती देवी के देह त्याग के बाद देवादिदेव महादेव के द्वितीय विवाह के प्रसंग में कामरूप के विषय में निम्नलिखित कथा है :—

प्राचीन समय में महादेव के स्कन्ध से विष्णु के सुदर्शन चक्र द्वारा जब सती के सब अङ्ग काट गिराये गये, सती वियोग में पागल से महादेव पूर्ण वैरागी हो गये। वे संसार को परित्याग कर हिमालय के निर्जन दुर्गम शिखर पर जा बहुत दिनों तक अनाहार घोर तपस्या में निमग्न रहे। इस महायोगी का ध्यान भंग करने में कोई भी समर्थ न था। इधर दक्ष राजा के यज्ञ में प्राण त्यक्ता सतीदेवी पुनः गिरिराज हिमालय के घर उनकी स्त्री मेनका के गर्भ से कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। उनके जन्म ग्रहण करने मात्र से ही राजधानी शोक दुःख शून्य हो आनन्द और आलोक की छटा से चमक उठी। हिमाचल के कुटुम्बियों ने आनन्द और प्रेम से उनके गिरिजा, पार्वती इत्यादि कई नाम रखे।

इसी बीच "पितामह" ब्रह्मा ने तारक नाम के असुरराज की कठोर तपस्या से मुग्ध हो उसे वर दिया था कि शिव

को संतान के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस त्रिभुवन के बीच उसका बध नहीं कर सकेगा।

ब्रह्मवर प्राप्त तारकासुर देवताओं और जगत वासियों को घमण्ड में आ उत्पीड़ित करने लगा, तथा अन्त में त्रैलोक्य का अधिश्वर भी बन बैठा —

अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः।
ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायक ॥
शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हन्ता भविष्यति।
इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः।
शिवौरससुताभावाज्जगर्ज्ज च ननन्द च ॥

[देवी भागवत। ७म् स्कन्ध। एकत्रिंशऽध्याय। १०-११]

अतएव इन्द्र इत्यादि देवताओं ने अनाथनाथ ब्रह्मा के निकट जा अपने प्रपीड़न इत्यादि का दुःख सुनाया।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, और शिव सृष्टि स्थिति और प्रलय कर्त्ता है। उनमें से एक के उदासीन होने मात्र से ही संसार अचल हो जाता है अतएव देवतागण तारकासुर के वध के निमित्त और सृष्टि रक्षा के निमित महादेव को संसारी करने का प्रयोजन आवश्यक समझने लगे। परन्तु देवी श्रेष्ठा सती के अतिरिक्त महादेव को विषयानुरक्त करने में अन्य कोई समर्थ न थी। अतः ब्रह्माजी ने दवताओं से कहा—"दाक्षायनी सती पूर्व प्राण त्याग कर शैल-जाया मेनका के निकट आयी

और गिरिजा ने मेनका के जठर से उसका उत्पादन किया है। यथा—

सती दाक्षायनी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने।
अगच्छन्मेनकां देवीं शैलराजस्य योषिताम्।
तां समुत्पादयामास मेनका जठरे गिरिः॥
[कालिका पुराण । द्विचत्वारिंश अध्यायः । ५५]

शिव पुराण में लिखा है कि * ब्रह्मा जी देवताओं को अश्वासन देकर बोले— 'हे देवताओं, शिव वीर्य सम्भूत पुत्र ही उस (तारकासुर) का विनाश करेगा। परन्तु यह कार्य अति दुष्कर है ...... "।

---

* शिव वीर्य्य समुत्पन्न पुत्रश्चैनं हनिष्यति।
तच्चैव दुर्लभं देवा विचार्य्यैवं निरन्तरम्॥
बुद्धिरेका समुत्पन्ना तथा च क्रियते यदि।
हिमवच्छिखरेऽरन्ये सम्भूस्तप्यति नित्यःश॥
सखिभ्यां सहिता तत्र परिचर्यां शिवस्यह।
वचनान्नारदस्यैवमूमा पित्रानुशासिता॥
करोतीह ऋषिश्रेष्ठास्तस्याः संयोगतां व्रजेत्।
यदा शिवस्तदा तत्र तस्यां वीर्यं समावपेत॥
[शिवपुराण । ज्ञान संहिता । दशम अध्याय । ७-१०]

देवताओं ने यह भेद जान अति प्रसन्न हो संसार त्यागी शिव के पुनर्विवाह के लिये चेष्टा करने का संकल्प किया। देवर्षि नारद शिव के पुनर्विवाह की चेष्टा में हिमालय के भवन में गये। वहाँ गिरिराज और रानी मेनका दोनों ने मुनि के आगमन से प्रसन्न हो पूर्ण यत्न के साथ उनका स्वागत किया। नारद मुनि ने भी प्रसन्न चित्त से अपने आगमन का कारण कह सुनाया। महादेव के साथ अपनी कन्या का विवाह सुन दोनों प्राणियों ने आकाश का चांद पालिया एवं नारद से विवाह सम्बन्धी परामर्श पर विचार करने लगे। नारदजी ने उनसे कहा 'आपलोग महादेव जहाँ तपस्या में लीन है उस स्थान का पता लगाकर उनकी पूजा एवं सेवा करने के लिये पार्व्वती को वहाँ भेजने की व्यवस्था करें। पार्व्वती के प्रति दिन वहाँ जाकर पूजा एवं सेवा करने से निश्चय ही महादेव की दृष्टि उनपर पड़ेगी। पार्व्वती के देखने मात्र से ही महादेव स्वयं विवाह का प्रस्ताव करेंगे। महादेव का योगास्थान आपकी राजधानी के निकट ही उत्तुंग गिरिश्रृङ्गपर अवस्थित है तथा वहाँ नित्य आने जाने में पार्व्वती को कोई असुविधा नहीं होगी।"

इस प्रकार से राजा और रानी को समझा बुझा कर नारदजी विदा हुए। गिरिराज और मेनका को अन्वेषण करने के पश्चात ज्ञात हुआ कि वह स्थान वहाँ से दूर नहीं है। परम आनन्द के साथ उनलोगों ने पार्व्वती

को महादेव की पूजा और परिचर्य्या के लिये नियोजित किया। देवर्षि के उपदेश एवं माता पिता की आज्ञा के अनुसार पार्व्वती नित्य सखियों सहित महादेव की परिचर्य्या के निमित्त तपस्या के स्थान पर जाती और पुनः लौट आतीं। पर महायोगी शिव ने एक दिन भी उनके ऊपर दृष्टि निक्षेप नहीं की।

इसके बाद महादेव को योग में तन्मय देख देवता-लोग इन्द्र के यहाँ गये और ब्रह्माजी प्रदत्त सुझाव का वृत्तान्त कह सुनाया। इन्द्रदेव ने उसी के अनुसार शिव का ध्यान भंग करने के लिये कामदेव को भेजा। यथा समय हिमकर के शिखर पर जा कामदेव अपनी पत्नी रति के साथ महादेव के तपस्याश्रम के समक्ष उपस्थित हुए। कामदेव ने कुसुम-सर का प्रयोग कर महादेव का ध्यान भंग किया। क्षण मात्र में ही ध्यान भ्रष्ट महादेव के तृतीय नेत्र समुद्-भूत प्रलयंकर कोपानल में दग्ध हो कामदेव भस्म हो गये। इस संकट को देख देवतागण विषादग्रस्त हुए एवं पार्वती का मुख अवनत हो गया। इस तरह भस्म हो मदन देव के अङ्ग में प्रविष्ट हुऐ, और उनका नाम अनङ्ग पड़ा—यथा—

कन्दर्पें भस्मसातभूते-देव्या अङ्गेषु गच्छति।
अनङ्ग इति विख्याति जगाम पचमार्गनः॥

[बृहतधर्मपुराण। मध्यम खन्ड। त्रयोविंश-अध्याय—४४]

उस समय रति शिव के निकट अत्यन्त विलाप करने लगी। इसपर देवताओं ने रति से कहा—माता! तुम भयपरित्याग कर इस भस्म में से थोड़ा ग्रहण करो'— ऐसा कह देवतागण बारम्बार विलाप करती हुई रति से फिर बोले—"रति कोप निवारण होने पर जब शिव प्रसन्न होंगे, उस समय हमलोग पुनः तुम्हारे प्राणवल्लभ को जीवित करेंगे"—

रतिमूचुः सुराः सर्व्वे रुरुदुश्च मुहुर्मुहुः।
किञ्चिदभस्मं गृहित्वा च रक्ष मातर्भयं त्यज॥
वयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः।
हरकोपापनयने सुप्रसन्नदिनेऽपि च॥
[ब्रह्मवैवर्त पुराण। श्रीकृष्णजन्मखण्ड। एकोनचत्वारिंशोध्याय। ५३—५४]

कामदेव के भस्म हो जाने पर किञ्चित शान्त हो महादेव ने मुंह फेरा। सामने पार्व्वती को देखा। पार्व्वती को देखते ही महादेव का क्रोध दूर हुआ। बहुत दिनों के परिचित मुख की सुप्तश्री मानों महादेव के मन में जाग उठी। महादेव पार्व्वती की ओर कुछ देर तक देखते रहे। पश्चात् उनका मुख मण्डल धीरे धीरे गम्भीर हो उठा। वे पूर्व्व की नाई कठोर हुए और फिर आसन से उठ पड़े। वे बिना कोई बात कहे तपस्यास्थान परित्याग कर चले गये। पार्व्वती की ओर उन्होंने पुनः

देखा भी नहीं। पार्व्वती ने भी अपने पूर्व जन्म के पति को पाने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया। रमणी सुलभ कोमलता का ध्यान न रख पार्व्वती ने बहुत दिनों तक तपस्या की और कठोर तपस्या के उपरान्त उन्हें सिद्धि मिली। उनके इष्टदेव ने प्रसन्न हो ब्रह्मचारी के वेष में आ दर्शन दिया। इतने दिनों के चिरआराध्य पति को पाकर पार्व्वती सम्पूर्ण दुःख और सारी यन्त्रणायें भूल गईं। पार्व्वती के साथ शीघ्र ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर देवादिदेव महादेव विदा हो कैलाश चले गये। तत् पश्चात् उन्होंने देवर्षि नारद से इस विवाह की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। देवर्षि स्वयं महादेव के मुँह से यह बात सुन अति प्रसन्न हुऐ एवं उन्हें प्रणाम कर उनके विवाह की योजना करने के लिये निकल पड़े।

शीघ्र ही उन्होंने स्वर्ग में मंदिर मंदिर शिव विवाह का सुख-सम्वाद सुनाया और पुनः मर्त्यलोक की ओर चले। नारदजी प्रथम हिमालय पर्व्वत पर गिरिराज के घर गये। इधर पार्व्वती के पास से महादेव के जाते ही यह संवाद भी गिरिपुर के चारों ओर फैल गया। देवर्षि नारद ने राजा और रानी से परामर्श कर विवाह का दिन नियुक्त किया। दिन स्थिर कर मुनिवर चले गये। विवाह के दिन विधि-अनुकूल निमन्त्रित हो प्रसन्न चित्त सारे देवता मुनीऋषि एवं ब्राह्मण पण्डितगण हाथों में अर्धपात्र लें उपस्थित

हुए। अति समारोह के साथ शुभ मुहूर्त में विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। पार्व्वती जी ने जिस आदर्श को विश्व के सम्मुख रख पति प्राप्त किया यह प्रत्येक कन्या के लिये अनुकरणीय है।

तीर्थ, पतिदेव, अभिष्टदेव, गुरु, मन्त्र और औषध इत्यादि में जिनकी जैसी आस्था रहती है उसी तरह की सिद्धि भी होती है। यथा—

तीर्थे कान्तेऽभिष्टदेवे गुरौ मन्त्रे यथौषधे।
आस्था च यादृशी याषां सिद्धिस्तासांच्चं तादृशी॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण एकोनचत्वारिंशोऽध्याय।
श्रीकृष्ण जन्मखण्ड २६)

रति देवी भी विवाह स्थल में उपस्थित हो पति लाभ के लिये एकाग्रचित्त से महादेव की वन्दना और आराधना करने लगी। शिव सन्मुख उपस्थित हो 'हा नाथ! हा नाथ!' कह कर वह विलाप करने लगी। विष्णु प्रभृति देवता और देवीगण भी कामदेव को पुनर्जीवित करने के लिये शिव प्रार्थना करने लगे। शूलपाणि की सुधामय दृष्टि के प्रभाव से कामदेव (मदन) उस भस्म से आविर्भूत हुए। इस प्रकार शिव की कृपा से अपने स्वामी कामदेव को प्राप्त कर रति कृतार्थ हुई—

कामं जीवय हे रुद्रेत्यूकत्वा शीघ्रं जगाम सः।
उचूर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्व्वकम्॥

सुधा दृष्टा शूलभूतो भस्मनो निर्गतः स्मरः ।
[ब्रह्मवैवर्तपुराण । श्रीकृष्णजन्मखण्ड । पंचत्वारंशोऽध्याय । २१-२२]

महादेव ने इस प्रकार कामदेव को पुनर्जीवन प्रदान किया । परन्तु कामदेव को उनका पूर्व रूप न प्राप्त होने के कारण स्वामी और स्त्री दोनों पुनः महादेव के निकट जा बहुविध स्तुति करने लगे। भोलानाथ ने सन्तुष्ट हो कामदेव को आदेश दिया कि भारत-वर्ष के ईशान कोण पर निलाचल पर्व्वत के ऊपर अभी भी सती के छिन्न देह के एक्कावन खण्डों में से एक खण्ड गुप्तरूप में है। वहीं जाकर देवी की महिमा की प्रतिष्ठा तथा उसका प्रचार करने से पहले की सी कान्ति पुनः प्राप्त हो जावेगी ।

कामरूप नामोत्पत्ति की कहानी

इसी तरह पहली जैसी कान्ति लाभ करने का उपाय पा कामदेव व रतिदेवी शंकरजी से विदा हुए और नील-पर्व्वत के लिये प्रस्थान किया। यहाँ आकर उन्होंने देवताओं के चिरवाँच्छित एवं मर्त्यवासियों के चिर पुजित महामुद्रा पीठ में भक्ति पूर्व्वक नाना प्रकार से स्तुति की। भगवती की कृपा से कामदेव को पूर्वरूप प्राप्त हुआ। *इस स्थान में कामदेव ने अपना पूर्ववत रूप प्राप्त किया। इसलिए इस भूमि का नाम कामरूप पड़ा।* यह देख देवतागण भी आकर देवी की स्तुति करने लगे।

इस तरह स्वर्गलोक में देवी के महात्म्य का प्रचार हुआ। जगतवासियों में देवी महात्म्य प्रचार करने के लिये कामदेव ने प्रस्तर द्वारा एक मन्दिर निर्माण करने के लिये विश्वकर्म्मा का अह्वान किया। विश्वकर्म्मा छद्मवेष में आ कारीगरों को साथ ले इस कार्य्य में जुट गये। महामाया की महामुद्रा के निकट पूर्व में लक्ष्मी व सरस्वती पीठ एवं उत्तर में ताम्रकुण्ड अवस्थित देख विश्वकर्म्मा ने प्रसन्न हो इन चारों स्थानों के ऊपर पत्थर का एक विचित्र मन्दिर निर्माण किया। मन्दिर के गात्र में ६४ योगिनियों और अष्टादश भैरवों की मूर्ति खुदवाकर कामदेव ने इसे *'आनन्दाख्यमन्दिर'* के नाम से प्रचारित किया। आजकल इस मन्दिर के नीचे का भाग ही रह गया है। उन्हीं ने सर्व्व प्रथम इस महामुद्रा पीठ का महात्म्य प्रचार किया। अतः इस महामुद्रा को *'मनोभवगुहा'* भी कहते है।

प्राचीन कामरूप राज्य का विवरण

कामरूप राज्य का प्राचीन नाम धर्मारण्य था। उस समय का कोई इतिहास नहीं मिलता। कामरूप अति प्राचीन देश है। यह पुण्य भूमि भारतवर्ष के ईषान कोण में अवस्थित है। रामायण महाभारत एवं कई तन्त्र पुराणों में इस कामरूप देश का उल्लेख पाया जाता है। योगिनि-तन्त्र और कालिकापुराण में विशेष कर उस कामरूप देश का विशद वर्णन पाया जाता है। महाकवि कालीदास ने अपने रघुवंश 'महाकाव्य' में राजा रघु का दिग्विजय वर्णन करते हुए अत्यन्त गौरव के साथ कामरूप राज्य का उल्लेख किया है। तन्त्र पुराण के अनुसार प्राचीन कामरूप की सीमा इस प्रकार थी।

पश्चिम में करतोया से एवं दिक्करवासिनी तक, उत्तर दिशा में कञ्जगिरि. पूर्व में तीर्थ श्रेष्ठ दिक्षूनदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र और लक्षा नदी के संगम स्थान तक कामरूप के नाम से सभी शास्त्रों में वर्णित है। योगिनि तंत्र में लिखा है :—यह त्रिकोणाकार लम्बाई में सौ योजन और विस्तार में त्रिंशत योजन हैं। यथा—

करतोयां समाश्रित्यं यावदिक्करवासिनी।
उत्तरस्यां कञ्चगिरिः करतोयात्त पश्चिमे॥

तीर्थश्रेष्टा दिक्षुनदि पूर्व्वस्थां गिरिकन्यके।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षायां संगमावधि।
कामरूप इति ख्यातः सर्व्वशास्त्रेषु निश्चितः॥

*　　*　　*　　*

त्रिंशद्योजन विस्तीर्णं दीर्घेण शतयोजनम्।
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकारमूत्तमम्॥
[योगिनी तन्त्र। एकादश पटल। १७-२१।

कालिका पुराण में भी इसी तरह की उक्ति पायी जाती है।

* करतोया नदी तक; पूर्व्व में दिक्कर वासिनी पर्य्यन्त इसका परिमाण--विस्तार में त्रिंशत् योजन और लम्बाई में एक सौ योजन है। यह त्रिकोणाकार, कृष्ण वर्ण बहुत पर्व्वतो से वेष्टित एवं इसके चारों ओर शत शत नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यथा—

करतोया नदी पूर्वं यावद्दिक्करवासिनिम्।
त्रिंशद्योजनविस्तिर्णम् योजनैकशतायतम्॥
त्रिकोणं कृष्णवर्णञ्च प्रभूताचलपूरितम्।
नदिशतसमायुक्तं कामरूपं प्रकीर्तितम्॥
(कालिका पुराण। एक पंचास अध्याय। ६५-६६)

---

* करतोयां समारभ्य यावद्दिक्करवासिनिं।
कामरूपेति त्वं लोका गायन्ति गिरीनन्दिन॥

इसी हेतु यह क्षेत्र प्राचीन काल में योगी एवं ऋषियों की निवास भूमि थी। उदाहरण स्वरूप, महामुनि वशिष्ठ गोकर्ण, तथा भगवान के अवतार महामुनि कपिल, इत्यादि के आश्रम इसी कामरूप में अवस्थित है।

योगिनि तन्त्र के अनुसार प्राचीन काल में कामरूप देश चार भागों में विभक्त था। यथा—(१) कामपीठ (२) रत्नपीठ, (३) स्वर्णपीठ या भद्र पीठ, (४) सोमारपीठ।

(१) कामपीठ—जिस स्थान में कामाख्या देवी है उसी स्थान का नाम कामपीठ है। स्वर्ण कोष एवं रूपिका नदी के बीच कामपीठ अवस्थित है। स्वर्णकोष नदी वर्त्तमान ग्वालपाड़ा जिला में तथा रूपिका (रूपही) नदी कामरूप जिले में अवस्थित है।

(२) रत्नपीठ—जिस स्थान में जल्पेश्वर शिव है उसका नाम रत्नपीठ है। करतोया एवं स्वर्णकोष नदी के बीच रत्नपीठ अवस्थित है। करतोया नदी रंगपुर, बोगड़ा और पबना जिला के बीच होती हुई प्रवाहित होती है।

(३) स्वर्णपीठ जिस स्थान में चम्पावती नदी है उस का नाम स्वर्णपीठ वा भद्रपीठ है रूपिका और भैरवी नदी के बीच स्वर्णपीठ है। भैरवी नदी आधुनिक तेजपुर के बीच से होती हुई प्रवाहित होती है।

(४) सौमारपीठ—जिस स्थान में दिक्करवासिनी देवी है उसी का नाम सौमारपीठ है। भैरवी और दिक्रां (दिकूराई)

के बीच में सौमार पीठ अवस्थित है। दिक्रां आजकल सदिया जिला से थोड़ी दूर पर प्रवाहित होती है।

आजकल कामरूप आसाम का केवल एक जिला मात्र है। इस जिले की प्राकृतिक सुन्दरता अति रम्य है। तीर्थराज ब्रह्मपुत्र और कपिली गङ्गा के पवित्र श्रोत अभी भी इसे पवित्र किये हुए हैं। तीर्थराज ब्रह्मपुत्र प्रवाहित हो इस देश को दो भागों में विभक्त करता है।

विदर्भ राज्य प्राचीन काल में इसी कामरूप के पूर्व खण्ड में सदिया के सन्निकट विख्यात भीष्मक राजा कौन्डिल्य नगर में राजधानी स्थापन कर राज्य करते थे। यह राज्य विदर्भ राज्य के नाम से भी विख्यात था। भीष्मक राजा की कन्या रूक्मिणी देवी को श्रीकृष्ण ने हरण कर उनसे विवाह किया था।

रामायण और महाभारत के समय कामरूप की कहानी

शोणितपुर राज्य—वर्त्तमान दरं जिला के सदर स्थान तेजपुर के सन्निकट शोणितपुर नामक नगर में राजधानी स्थापित कर बलिराज के वंशधर शिव भक्त वाणासुर ने राज्य किया। तेजपुर में महाभैरव मंदिर शिव भक्त वाणासुर ने स्थापित किया सुना जाता है। ये प्रागज्योतिषपुर के राजा नरकासुर के प्रिय मित्र थे। इसी वाणासुर के ऊषा नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। ऊषा की एक सखी थी, जिसका नाम चित्रलेखा था। इसी चित्रलेखा की सहायता

से श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध अग्निगढ़ का भेदन कर ऊषा को हरण करने आये और बन्दी बनाये गये। फलतः बाणासुर और श्रीकृष्ण के बीच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में शिवने अपने भक्त बाणासुर की सहायता की। इसी युद्ध को हरिहर युद्ध कहते हैं। बाणासुर परास्त हुआ। श्रीकृष्ण से सन्धिकर इसने अनिरुद्ध के साथ अपनी कन्या ऊषादेवी का विवाह कर दिया। तेजपुर के निकटस्थितअग्निगढ़ नामक प्रसिद्ध पर्व्वत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हीडम्बपुर राज्य—वर्त्तमान डीमापुर का प्राचीन नाम हिडम्बपुर था। महाभारत के समय हीडम्बपुर हेडम्ब राज्य की राजधानी था। इस राज्य के राजा का नाम हिडीम्ब था। पान्डवों ने लाक्ष गृह से भागकर यहाँ आश्रय लिया। इसी समय द्वितीय पांडव भीम ने होडम्ब की बहिन हिडीम्बा से विवाह किया। महावीर घटोत्कच उसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। कुरुक्षेत्र युद्ध में कर्ण के द्वारा इसकी मृत्यु हुई।

नागराज्य—प्राचीन नागराज्य ही वर्तमान नागा पहाड़ ही है ऐसा इतिहास के द्वारा ज्ञात होता है। नाग राज्य के बारे में पौराणिक विवरण इस प्रकार है कि अर्जुन तीर्थयात्रा के समय यहाँ आये। ऐरावत कुल के कौरव्य नामक नाग राजा को कन्या उलूपी से विवाह किया। विवाह के समय अर्जुन को उलूपी ने वर दिया कि जल के अन्दर उनको कोई भी पराजित नहीं कर सकता। उलूपी के गर्भ से इरावन का जन्म

हुआ। मातामह के सम्बन्ध से इरावन ने नागराज्य प्राप्त किया।

मनीपुर—तृतीय पान्डव अर्जुन बारह वर्ष वनवास निवास के समय तीर्थ यात्रा के लिए मनीपुर आये उन्होंने मनीपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से विवाह किया। चित्रांगदा के गर्भ से बभ्रूवाहन का जन्म हुआ। अर्जुन दूसरी बार युद्धिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय यज्ञाश्व के साथ मनीपुर आये उस समय बभ्रूवाहन मनीपुर का राजा था। इन्होंने अर्जुन के पिता होने के कारण परम आदर सत्कार किया। इनके क्षात्रधर्म पथ भ्रष्ट होने से अर्जुन ने इनकी निन्दा की। बभ्रूवाहन विमाता उलूपी के आदेशानुसार युद्ध करने के लिए तत्पर हुए। अर्जुन उस युद्ध में पराजित हो मूर्छित हो गया। उसके बाद उलूपी ने नाग लोक से सजीवनी मणि लाकर उनको पुनर्जीवित किया। इसी मणि के नामानुसार इस राज्य का नाम मनीपुर हुआ ऐसी किम्बदन्ती है। मनीपुर राजवंश बभ्रूवाहन के वंशधर माने जाते हैं।

जयन्तिया पुराण के अनुसार जयन्तिया नारी देश के नाम से ज्ञातव्य है। अर्जुन युद्धिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के यज्ञाश्व के साथ यहाँ आये। इस प्रदेश की अधीश्वरी प्रमीला ने उनके अश्व को बांध लिया। बाद में अर्जुन के साथ प्रमीला का विवाह हुआ इसलिए उसने अश्व को छोड़ दिया। इस प्रदेश में जयन्ति देवी का मंदिर होने के कारण

इस प्रदेश का नाम जयन्तिया पड़ा। प्रचीन काल में यहाँ नर बलो की प्रथा थी।

वर्त्तमान गौहाटी के निकठ प्रागूज्योतिषपुर में ही नरकासुर और उसके पुत्र भगदत्त राज्य करते थे। महाभारत में भगदत्त के पराक्रम की कहानी वर्णित है। भगदत्त के भानुमति नामकी एक रूपवती कन्या थी। महामान्य दुर्योधन ने इसी भानुमती के साथ विवाह कर उसे इस विशाल भारत साम्राज्य की सम्राज्ञी बनाया था। भगदत्त ने कुरु-क्षेत्र में भो असंख्य किरात सैन्य के साथ कौरवाधिपति दुर्योधन की सहायता की थी। पश्चात इसी युद्ध में महारथी अर्जुन द्वारा वे निहत हुए।

कालिका पुराण में भी प्रागज्योतिषपुर का उल्लेख है प्राचीन काल में पितामह ब्रह्मा ने इसी स्थान पर बैठ कर नक्षेत्र जगत की सृष्टि की था। इसी हेतु इसका नाम प्रागज्योतिषपुर पड़ा। यथा—

अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राङ्ग-नक्षत्रं ससर्ज्जह।
ततः प्रागूज्योषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा॥
[कालिकापुराण। अष्टत्रिंश अध्याये ११८]

आजकल यह गौहाटी के नाम से प्रख्यात है और कामरूप जिले में आसाम का सबसे प्रमुख शहर है। प्राचीन काल में यह ज्योतिष विद्या का प्रमुख केन्द्र था।

इस देश के पवित्र तीर्थ स्थानों के अतिरिक्त यहीं के आचार, नीति, ज्ञान विद्या एवं सभ्यता इत्यादि को देखकर भी देश देशान्तर से अनेक यात्री यातायात की असुविधाओं के रहते हुऐ भी यहाँ आकर स्थाई रूप से निवास करने लगे है। वर्त्तमान काल में जो ज्ञानि एवं उच्चवंश की सन्ततियाँ यहाँ देखने में आती है, वह इन्हीं के वंशज है। भारत के अतिरिक्त तिब्बत और चीन इत्यादि देशों के यात्रियों ने भी आकर यहां तीर्थ पर्य्यटन एवं ज्ञान लाभ किया है। इस प्रसंग में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेनसांग का नाम उल्लेखनीय है। ई० सन् ७वीं शताब्दी में इन्होंने इस सम्बन्ध में उस समय का प्राचीन कामरूप के प्रबल प्रताप धारी स्वधर्मनिष्ट हिन्दु नृपति भास्करवर्मन के राज्य काल के समय जो विवरण लिखा है वह चित्ताकर्षक एवं देश के लिये गौरव की वस्तु है। आजकल भी तिब्बतीय एवं भोटिया यात्री हयग्रीव माधव को अपने महामुनि का पीठ कह कर दर्शनार्थ प्रति वर्ष शीतकाल में अति कष्ट सहन कर के भी आते हैं।

कामरूप में प्राचीन काल में अनेक तीर्थ स्थान अवस्थित थे। उनमें से कुछ महानद ब्रह्मपुत्र के गर्भ में विलीन हो गये।

अतीत काल से दानव, असुर, पाल, और सेन (खेन) इत्यादि वंशों के नृपतिगण इस कामरूप राज्य में शासन करते आये हैं। उसके बाद इस देश में कछाड़ी और

चौटिया इत्यादि पहाड़ी जातियों ने भी बहुत काल तक राजत्व किया है। अन्त में ई० सन् १६वीं शताब्दी में पूर्व में अहोम और पश्चिम में कोच—इन दो प्रबल जातियों द्वारा प्राचीन कामरूप राज्य विभक्त किया गया। कामतापुर के कोच वंशीय राजाओं के अवसान के बाद प्रायः ६०० वर्ष तक अहोम राजाओं ने इस राज्य में शासन किया। इसके बाद प्रायः एक वर्ष तक वर्त्तमान ब्रह्मदेश के 'मान' राजा की अधीनता में नाना प्रकार के उत्पातों और अत्याचारों के बीच यह देश पद दलित होता रहा। बंग देश के वर्गी आक्रमण के समान आसाम में इन ब्रह्मदेशवासियों का आक्रमण भी अति भयावह हुआ था। १८२५ ई० में बृटिश गवर्नमेंट ने बरमियों को परास्त कर १८२७ ई० में उनसे सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार यहाँ अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ी।

बृटिश राजत्व के पहले यह देश अति दुर्गम था। यातायात की असुविधाओं के कारण तीर्थ यात्रियों की संख्या बहुत ही कम थी। वर्त्तमान काल में यातायात की सुविधाओं ने तीर्थ यात्रियों की संख्या में उत्तरोतर बृद्धि की है।

—:०:—

नरकासुर की कहानी और प्रस्तर-मार्ग का निर्माण

तन्त्र और पुराणों के अनुसार वाराह रूपी स्वयं नारायण से धरित्री के गर्भ में नरकासुर का जन्म हुआ। मर्त्य लोक में वे राजर्षि जनक के घर पाले पोसे गये। धरित्री धात्री के रूप में नरकासुर का पालन करती थी। नरकासुर असुर होने पर भी राजा जनक से शिक्षा पाने के कारण आर्य्यभाव सम्पन्न था। कालक्रम से धरित्री ने नरकासुर को उसके जन्म का वृतान्त बतलाया। उस समय नरकासुर पिता के दर्शन के लिये उत्सुक हुआ, और अपना स्वरूप समझ सका। नारायण ने प्रसन्न हो नरकासुर को महाफलदायी कामरूप के अन्तर्गत प्राग्ज्योतिषपुर का राज्य प्रदान किया। उस समय कामरूप किरातों का राज्य था। धरित्री के वरदान से दुर्धर्ष नरकासुर किरात-राज्य घटक का युद्ध में वधकर नृपति श्रेष्ठ हुए। भगवान विष्णु ने अपने पुत्र का विवाह विदर्भ राजा की कन्या माया देवी से करा दिया। नरकासुर ने नारायण के वरदान से एक प्रकार अमर शक्ति प्राप्त की थी। राज्य की श्रीवृद्धि के लिये नारायण अपने पुत्र को कह गये कि—"द्वापर के अन्त में तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।

इस बीच देवताओं और ब्राह्मणों का विरोधी न होना तथा अपनी आसुरी प्रकृति का प्रदर्शन न करना। जगत माता महामाया कामाख्या देवी के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना न करना अन्यथा मारे जावोगे।"—यथा—

महादेवीं महामायां जगन्मातरमम्बिकाम्।
कामाख्यां त्वं विना पुत्र नान्यदेवं यजिष्यसि॥
इतोहन्यथा त्वं विहरन् गतप्राणों भविष्यसि।
तस्मान्नरक यत्नेन समयं प्रतिपालय॥

[कालिका पुराण अष्टित्रिंस अध्यायः। १४४-१४५]

नरकासुर ने जब तक नारायण के बचन का पालन किया तब तक उसके राज्य की श्रीवृद्धि होती रही। इस तरह त्रेता एवं द्वापर पर्यन्त उसने राज्य किया। यह नरकासुर पहले कामाख्या देवी का भक्त था।

द्वापर युग के प्रायः अन्त में राजा बली का पुत्र वाणासुर शोणितपुर का अधिपति हुआ। उसमें एवं नरकासुर में घनिष्ट मित्रता थी। इस असुर की कुसंगत में पड़कर नरकासुर भी देव द्विज विद्वेषी होगया। उसके प्रताप से स्वर्ग मर्त्य और पाताल तीनों लोक प्रकम्पित होने लगे। इसने इन्द्र को पराजित कर उनका छत्र हरण कर लिया। नरकासुर का दिन प्रतिदिन अत्याचार बढ़ने लगा। इससे देवतागण अधीर हो उठे और उसके अत्याचार के प्रतिकार के लिये ब्रह्मा

की शरण में आये। देवताओं की कातर प्रार्थना सुन ब्रह्मा ने उन्हें जगन्माता कामाख्या देवी के शरण में जाने का आदेश दिया। भगवती ने देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हो उन्हें अभय दान दिया।

कालिका पुराण में लिखा है—नरकासुर के प्राग्ज्योतिषपुर में राज्य करने के समय महर्षि वशिष्ठ कामरूप के सन्ध्याचल पर्व्वत पर तपस्या करते थे। नरकासुर बाणासुर की कुसंगत में पड़ देवी की पूजापाठ से विद्वेष करने लगा। अतः जब वशिष्ठ एक दिन महामाया का दर्शन करने के लिये आये तो उसने उन्हें बाधा दी। फलतः उन्होंने अभिशाप दिया कि "जबतक तुम जीवित रहोगे तबतक के लिये माता कामाख्या सपरिवार अन्तर्ध्यान रहेगी"।

त्वं यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभूः।
सर्व्वैः परिकरैः सार्द्धमन्तरर्द्धानाय गच्छतु

[कालिका पुराण। उनसत्ताविंशाध्य— १८]

बराहरूपी स्वयं नारायण जिसके पिता और भूतधात्री धरित्री जिसकी माता थी, जिसका राजत्वकाल त्रेता से द्वापर तक रहा, जिसके प्रबल प्रताप से स्वर्ग-मर्त्य और पाताल तोनों लोक प्रकम्पित थे एवं जिसकी कथाएँ विविध पुराणों और इतिहासों में वर्णित हैं, उसी प्राग्ज्योतिषपुर के अधिश्वर के देव द्विज विद्वेषी होने के कारण इसका मृत्यु काल उपस्थित

जान महामाया ने छल से विष्णु की सहायता से इसका वध किया।

कामाख्या देवी के मन्दिर निर्माण के सम्बन्ध में विविध स्थानों पर विविध उल्लेख पाये जाते हैं। कामदेव ने विश्वकर्म्मा से जो मन्दिर निर्माण कराया था वह मन्दिर '*आनन्दाख्या*' के नाम से विख्यात है। यह भी किम्बदन्ती है कि मन्दिर नरकासुर राजा के समय में बना। देवी पार्व्वती के चारों रास्तों पर जो व्याघ्रद्वार, हनुमंत द्वार, स्वर्गद्वार एवं सिंहद्वार हैं वे तथा प्रस्तर निर्मित चारों पथ नरकासुर राजा ने ही बनाये थे ऐसा विख्यात हैं। जनश्रुतियों में आसाम के राज घराने के इतिहास में तथा रायबहादुर गुणाभिराम बरुआ कृत 'आसाम के इतिहास' में इस विषय में इस तरह उल्लेख पाया जाता है—

"एक दिन भगवती ने नरकासुर को अपना लावण्यमय रूप दिखलाया। नरकासुर देवी के रूप को देख मोह को प्राप्त हुआ। उन्हें अपनी पत्नी की रूप में अपनाने को उसने इच्छा प्रकट की। भगवती ने उसका अन्तकाल उपस्थित जान छल करके कहा कि एक रात में यदि तू इस पर्व्वत के चारों ओर चार प्रस्तर मार्ग और एक विश्रामगृह निर्माण कर देगा तो मैं तेरी पत्नी हो जाऊँगी अन्यथा तेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। घमंड में चूर नरकासुर इस प्रस्ताव पर

राजी हो गया। महामाया के रूप पर मोहित असुर ने परम प्रसन्नता पूर्व्वक कार्य्य आरम्भ किया। इस तरह एक रात में ही चारों मार्गों का निर्माण समाप्त कर वह विश्राम गृह निर्माण की योजना करने लगा। इस तरह असुर के कार्य्य से अपने को निरूपाय देख देवी मायारूपी कुक्कुट के द्वारा रात्रि के बीतने की सूचना दे कहने लगी, 'रे घमण्डी असुर। अब अपनी मृत्यु ध्वनि सुन। गृह निर्माण की अब आवश्यकता नहीं, तेरी प्रतिज्ञा भंग हुई।" कुक्कुट की यह वाणी सुन नरकासुर क्रोध से पागल हो उठा। उसने कुक्कुट का पीछा करते करते ब्रह्मपुत्र के पार कुछ दूरी पर जा तेज अस्त्र से उसका वध किया। वह स्थान आज भी "कुकराकाटाचोको" के नाम से विख्यात है। तत्पश्चात् देवी की माया से भगवान् विष्णु ने नरकासुर का संहार किया।' पाण्डु घाट से कामाख्या जाने का जो मार्ग है, उसके बगल में सिंहद्वार पर गणेश की मूर्ति के निकट स्थित एक शिला नरकासुर का स्मरण कराती है। नीलाचल के दक्षिण में वर्त्तमान पाण्डु गौहाटी राजपथ से संलग्न जो पर्व्वत श्रेणी है उसे नरकासुर का पर्व्वत कहते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि इस पर्व्वत श्रेणी के मध्य में नरकासुर की राजधानी थी। अभी भी पर्व्वत के ऊपर तलाव इत्यादि के चिन्ह भी है।

नरकासुर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र भगदत्त राजा

हुआ। यह आर्य्य जाति एवं वैदिक धर्म्मावलम्बी था भगदत्त का वंश लोप होने पर कामरूप के पराक्रम का ह्रास हुआ और यह छोटे २ राज्यों में विभक्त होगया।

कुच-बिहार के महाराजा का परिचय देवी के मन्दिर का आविष्कार—स्थानीय प्रवाद—निर्माण कार्य्यावली—और पुनः देवी महात्म्य प्रचार

कामरूप में एक के बाद एक अनेक राजा राज्य कर चुके हैं। परन्तु इनके विषय में कोई धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। धर्म विप्लवों और युग विप्लवों में देवी के 'महामुद्रापीठ' के लुप्त प्रायः होने के कारण उनकी सेवा पूजा के विषय में कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता।

कालक्रम से कामदेव प्रतिष्ठित देवी के मन्दिर का उर्द्ध-भाग धर्म विप्लवादिकों में नष्ट होगया और महापीठ स्थान जंगलों से परिपूर्ण होगया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि नरकासुर के हीन आचरण पर वशिष्ठ देव द्वारा दिये गये श्राप के कारण देवी महात्म्य लुप्त हो गया एवं उक्त स्थान

उत्तरोत्तर अनार्य्य जातियों की आवास भूमि में परिणित हो गया।

धर्म विप्लवादि के बाद करीब करीब ई० सन् आठ वींशताब्दि में शिव अवतार शंकराचार्य द्वारा सनातन धर्म प्रचार होने के बाद कामतापुरी (वर्त्तमान कुचबिहार) के महाराजा विश्वसिंह ने देवी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।

सम्भवतः वेदान्तवादी शंकराचार्य्य के दिग्विजय के समय सनातन वैदिक धर्म का पुनरुत्थान होने पर जिस तरह भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थ स्थानों में देवी देवताओं के महात्म्य का पुनः प्रचार हुआ उसी तरह जगतमाता कामाख्यादेवी का भी महात्म्य पुनः प्रतिष्ठित हुआ। कहा जाता है कि जगतगुरु शंकराचार्य्य ने कामरूप के इस महातीर्थ में आकर उस समय के प्रसिद्ध तांत्रिक पण्डितअभिनव गुप्त के साथ शास्त्रार्थ किया था।

बौद्ध काल के बाद अर्थात गुप्त काल से, खासकर विक्रमादित्य के समय से हिन्दू धर्म प्रचारकों की चेष्टा से पौराणिक हिन्दू धर्म स्थाई रूप से प्रतिष्ठित हुआ। उस समय बौद्ध युग के अन्त में कामरूप में पालवंशीय हिन्दू राजागण राज्य करते थे। ११५० ई० में इसी पालवंश के धर्मपाल नाम के राजा वर्तमान गौहाटी के पश्चिम भाग में राज्य करते थे। उन्होंने भारत के पश्चिमाञ्चल के कान्यकुब्ज, मिथिला प्रभृति प्रसिद्ध स्थानों से अनेक ब्राह्मणों को लाकर

अपने राज्य की कई जगहों में बसाया। उनलोगों को भरण-पोषण के लिये भूमि आदि का भी दान दिया। उक्त ब्राह्मणों के वंशधर अब भी यहाँ हैं। कामरूप जिले के 'श्वालकुची' गाँव के 'वासत्तरिया' नामक ब्राह्मणों की भूमि राजा धर्मपाल प्रदत्त हैं। इस दान के प्रमाण स्वरूप अभी भी उनके पास ताम्रपत्र मौजूद हैं। ये वासत्तरीया ब्राह्मणगण महामाया कामाख्या के मन्दिर के आदि पुजारी एवं राजा धर्मपाल द्वारा कान्याकुब्ज से लाये गये ब्राह्मणों के नाम से सुपरिचित हैं।

पालवंश के बाद 'वारभुइयों' के राजत्व काल में कामरूप के पश्चिमी अञ्चल में हाजो नामक एक 'मेच' अर्थात् कोचवंशीय शासनकर्त्ता द्वारा एक छोटा राज्य शासित हुआ है। इस हाजो के हीरा और जीरा नाम की दो कन्यायें थी।

कुचविहाराधिपति विश्वसिंह और शिवसिंह

हैहैय वंश के हरिदास, (नामान्तर हारिया) वर्त्तमान ग्वालपाड़ा जिला के पूर्व्व मानस नदी, दक्षिण ब्रह्मपुत्र नद और उत्तर हिमालय पर्व्वत, आदि के मध्य की भूमि के माण्ड-लिक राजा थे। हाजो ने अपनी दोनों कन्याओं का विवाह हरिदास के साथ कर दिया। यथा समय हीरा के गर्भ से एक विशु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

किम्बदन्ती है कि—यह पुत्र शिव की कृपा से उत्पन्न हुआ था और शिव के वंशधर के नाम से विख्यात हुआ। बाल्यकाल से ही बिशु के पराक्रम को देखकर लोग कहते थे कि राज्य में एक भगवान का शक्तिधर पैदा हुआ है। हीरा के गर्भ से भी एक 'बिशु' नामक पुत्र पैदा हुआ। हरिदास के पुत्र बिशु पिता के देहान्त के बाद राजा हुए। विशु परम प्रतापी राजा थे। उनकी बुद्धि एवं शौर्य्य वीर्य्य के प्रभाव से राज्य की अवस्था उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर हुई। राज्य विस्तार में भी उनका काफी उत्साह रहता था। इधर उनके नाना हाजो को कोई पुत्र न रहने के कारण उनकी मृत्यु के उपरान्त १४८५ ई० में बिशु कामरूप में हाजो के अधीश्वर हुए। अपने बाहुबल से प्रतिद्वन्दियों को हराकर उन्होंने कई राज्यों को अपने अधिकार में किया। इस तरह राज्य विस्तार करते हुऐ पूरब में बरनदी से लेकर पश्चिम में करतोया नदी तक उनका राज्य फैल गया। अन्त में १४९० में वह हिन्दूधर्म में दीक्षित हो महाराज विश्वसिंह के नाम से प्रख्यात हुए तथा अपने अनुज शिशु को शिवसिंह के नाम से युवराज घोषित किया।

महाराजा विश्वसिंह ने अपनी राजधानी चिकना से हटाकर (कोच बिहार प्रदेश स्थित) कामतापुर ले गये। युद्ध द्वारा इन्होंने अनेकों छोटे छोटे एवं वृहत् राज्यों पर आधिपत्य स्थापित किया। कामरूप के अन्तर्गत दुगारी

फूलगुड़ी, बिजनी, बेलतला, बरनगर, दरङ्ग इत्यादि छोटे छोटे राज्यों के राजागण उनकी अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य हुए।

कामरूप की युद्ध यात्रा के समय महाराजा विश्वसिंह ने गौहाटी के निकटवर्त्ती नीलाचल पर अवस्थित कामाख्या देवी के महापीठ का जीर्णोद्धार किया।

कामाख्या देवी के मन्दिर की खोज के विषय में जनश्रुति

पूर्व की ओर का देवी का प्रस्तर निर्मित महापीठ मन्दिर कालक्रम से ध्वंस हो गया था। उस समय यह स्थान जङ्गलाकीर्ण एवं हिंसक जन्तुओं की आवास भूमि में परिणित होगया था। यहां पर केवल कुछ मेच और कोंच जाति के लोगों की झोपड़ियां थी।

उक्त स्तूप पार्श्ववर्त्ती स्थानों से ऊंचा था एवं देवी के आसन के रूप से विख्यात था। नीलाचल निवासीगण उस स्तूप को भक्ति भाव से देखते थे। विपद्-आपद तथा पारिवारिक आनन्द उत्सवों में पशु-पक्षियों की बलि देकर वे पीठ स्तूप की पूजा करते थे। पीठ स्तूप से अविरल सुस्वादु जलधारा प्रवाहित होती थी। ऐसी भी जनश्रुति है कि पालतू पशु आदि एवं द्रव्यादि के खो जाने पर उनकी पुनः प्राप्ति की कामना से उक्तजल श्रोत में दूध चढ़ाने पर कामना सिद्ध होती थी। इस तरह वे लोग उक्तस्थान को देवी की जागृत पीठ मानकर काम्यवस्तु की प्रार्थना में अर्च्चना

वन्दना करते थे। सुनने में आता है कि इस तरह की अनेकों इष्ट सिद्धि की घटनाएँ होती थो। उक्तस्थान वृक्षादि एवं जङ्गलों से वेष्टित होने पर भी भी अधिवासियों को देवी के पीठस्थान के रूप में परिचित था। परन्तु उस समय इसकी ख्याति दूरदेश व्यापी नहीं थी।

एक बार जब महाराजा विश्वसिह आहोमराजा के साथ युद्ध में व्यस्त थे, वे और उनके भ्राता शिवसिंह एक नैरा अभियान के समय अपने सैन्यदल से बिछुड़ कर रास्ता भूल गये। वे लोग घूमते घूमते नरकासुर निर्मित शिला पथ द्वारा नीलाचल पर्वत के ऊपर चढ़ गये। साथियों से बिछुड़े हुए एवं पर्व्वतारोहण से परिश्रान्त एवं तृषार्त दोनों भाई जल की खोज करने लगे। घोर अन्धकार के कारण किसी से भेंट न होने पर नीचे लौट ही रहे थे कि इसी समय किसी अदृश्य शक्ति ने उन्हें पथप्रदर्शक के रूप में उक्त पीठस्तूप के सन्निकट एक वटवृक्ष के नीचे ला उपस्थित किया। उनलोगों के नेत्रों में ज्योति जाग उठी। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा उसी वृक्ष के नीचे पूजा कर रही है। वृद्धा को देख उनके अन्तःकरण में नवीन आशा स्फुरित हुई। परिश्रान्त दोनों भाइयों ने तृषा निवारणार्थ उससे जल मांगा। दोनों की क्लान्त अवस्था से द्रविभूत हो सम्मुखस्थ जलश्रोत का सुस्वादु जलपान करने का तथा वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने का वृद्धा ने इन्हें आदेश

दिया। बृद्धा के कथनानुसार उन्होंने प्यास बुझाई एवं वृक्ष के नीचे विश्राम किया। फिर उत्सुक हो वृद्धा से उन्होंने इस स्थान के बारे में पूछा तो वृद्धा से उन्हें ज्ञात हुआ कि वह मृतिका-स्तूप उनलोगों की आराध्या देवी का जागृत पीठ स्थान है तथा विशुद्ध चित्त एवं भक्तिभाव से जो कोई इस देवी की शरण में आते हैं उनकी मनोकामना पूरी होती है। कभी अन्यथा नहीं होता। महाराज तथा उनके छोटे भाई ने भूमि पर लेटकर तत्क्षण ही साष्टांग प्रणाम किया एवं देवी के महापीठ की मानस पूजा की देवी के निकट महाराजा ने करुण प्रार्थना की कि विच्छिन्न सैन्य दल से उन्हें मिला देवें तथा उनका राज्य निष्कंटक रहे। राजा ने यह भी मानस संकल्प किया कि इष्टप्राप्ति होने पर सोने का मन्दिर निर्माण कर वहाँ पूजा अर्चना की व्यवस्था करेंगे। करूणामयी की कृपा से बिछुड़ा हुआ सैन्यदल उनसे आ मिला। इसतरह सैन्यदल के सम्मुख उपस्थित होने पर महाराजा के मन में भगवती के प्रति दृढ़ विश्वास एवं भक्ति का संचार हुआ। महाराजा बृद्धा से देवी महात्म्य और पूजादि के सम्बन्ध में नानाविधि जिज्ञासा करने लगे। बृद्धा ने कहा– "देवी की पूजा में छागादि बलि, सिन्दूर, गन्ध, पूष्प, परिधेय रक्तवस्त्र अलंकारादि, चढ़ाया जाता है। इस तरह महाराज विश्वसिंह

वन्दना करते थे। सुनने में आता है कि इस तरह की अनेकों इष्ट सिद्धि की घटनाएँ होती थी। उक्तस्थान वृक्षादि एवं जङ्गलों से वेष्टित होने पर भी भी अधिवासियों को देवी के पीठस्थान के रूप में परिचित था। परन्तु उस समय इसकी ख्याति दूरदेश व्यापी नहीं थी।

एक बार जब महाराजा विश्वसिंह आहोमराजा के साथ युद्ध में व्यस्त थे, वे और उनके भ्राता शिवसिंह एक नैश अभियान के समय अपने सैन्यदल से बिछुड़ कर रास्ता भूल गये। वे लोग घूमते घूमते नरकासुर निर्मित शिला पथ द्वारा नीलाचल पर्वत के ऊपर चढ़ गये। साथियों से बिछुड़े हुए एवं पर्वतारोहण से परिश्रान्त एवं तृषार्त दोनों भाई जल की खोज करने लगे। घोर अन्धकार के कारण किसी से भेंट न होने पर नीचे लौट ही रहे थे कि इसी समय किसी अदृश्य शक्ति ने उन्हें पथप्रदर्शक के रूप में उक्त पीठस्तूप के सन्निकट एक वटवृक्ष के नीचे ला उपस्थित किया। उनलोगों के नेत्रों में ज्योति जाग उठी। उन्होंने देखा कि एक वृद्धा उसी वृक्ष के नीचे पूजा कर रही है। वृद्धा को देख उनके अन्तःकरण में नवीन आशा स्फुरित हुई। परिश्रान्त दोनों भाइयों ने तृषा निवारणार्थ उससे जल मांगा। दोनों की क्लान्त अवस्था से द्रविभूत हो सम्मुखस्थ जलश्रोत का सुस्वादु जलपान करने का तथा वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने का वृद्धा ने इन्हें आदेश

दिया। वृद्धा के कथनानुसार उन्होंने प्यास बुझाई एवं वृक्ष के नीचे विश्राम किया। फिर उत्सुक हो वृद्धा से उन्होंने इस स्थान के बारे में पूछा तो वृद्धा से उन्हें ज्ञात हुआ कि वह मृतिका-स्तूप उनलोगों की आराध्या देवी का जागृत पीठ स्थान है तथा विशुद्ध चित्त एवं भक्तिभाव से जो कोई इस देवी की शरण में आते हैं उनकी मनोकामना पूरी होती है। कभी अन्यथा नहीं होता। महाराज तथा उनके छोटे भाई ने भूमि पर लेटकर तत्क्षण ही साष्टांग प्रणाम किया एवं देवी के महापीठ की मानस पूजा की देवी के निकट महाराजा ने करुण प्रार्थना की कि विच्छिन्न सैन्य दल से उन्हें मिला देवें तथा उनका राज्य निष्कंटक रहे। राजा ने यह भी मानस संकल्प किया कि इष्टप्राप्ति होने पर सोने का मन्दिर निर्माण कर वहाँ पूजा अर्चना की व्यवस्था करेंगे। करूणामयी की कृपा से बिछुड़ा हुआ सैन्यदल उनसे आ मिला। इसतरह सैन्यदल के सम्मुख उपस्थित होने पर महाराजा के मन में भगवती के प्रति दृढ़ विश्वास एवं भक्ति का संचार हुआ। महाराजा वृद्धा से देवी महात्म्य और पूजादि के सम्बन्ध में नानाविधि जिज्ञासा करने लगे। वृद्धा ने कहा—"देवी की पूजा में छागादि बलि, सिन्दूर, गन्ध, पुष्प, परिधेय रक्तवस्त्र अलंकारादि, चढ़ाया जाता है। इस तरह महाराज विश्वसिंह

देवीपीठ का प्रत्यक्ष महात्म्य और पूजादि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्तकर विष्मित एवं आकृष्ट हुए।

इस प्रसंग में एक किम्बदन्ती और भी प्रचलित है, कि जिस स्थान में राजा ने जलपान किया, वहाँ प्रमाणस्वरूप अर्द्धहस्त परिमित तीन खण्ड—नल (ईकरा) तथा स्वनाम लिखित हीरे की अंगूठी भी उन्होंने निक्षेप की और प्रार्थना की कि स्वदेश लौटकर काशी में गङ्गा स्नान करते समय गङ्गाजल में यदि पुनः उन्हें देख सका तो भगवती की शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण मानूँगा।

घर लौटकर राजकाज में व्यस्त रहने के कारण राजा वह बात भूल गये। परन्तु एक बार काशी में जब गङ्गाजी के जल में स्नान कर तर्पण कर रहे थे उसी समय वे तीन नल (ईकरा) खण्ड बारम्बार उनकी अंजलि में चुभने लगे। महाराजा ने आश्चर्य चकित हो इन्हें हाथ में ले देखा तो सहसा राजा को अपनी विस्मृत बात याद आगयी। देश लौट पण्डितों की सभा बुला आद्योपान्त उन्होंने अपने भ्रमण की घटना कह सुनाई। पण्डितों ने नाना शास्त्र एवं पुराणों का परिशीलन कर सिद्ध किया कि उक्त पीठ स्तूप एक्कावन में से अन्यतम महामाया कामाख्या देवी का जागृत शक्ति-पीठ स्थान ही है। वृद्धा द्वारा दिया गया विवरण एवं पण्डितों का सिद्धान्त भ्रम रहित समझ महाराज

को विश्वास हुआ। प्रत्यक्ष प्रमाणादि देख अपनी पूर्व्व प्रतिज्ञा के पालनार्थ वे कटिबद्ध हो उठे।

यथा समय महाराज विश्वसिंह ने नीलाचल पर कर्मचारी वर्गों के साथ जा शिविर स्थापन किया। उन्होंने उक्त स्थान के वन इत्यादि को साफ करवा कर पीठ स्तूप को खुदवाने की व्यवस्था की। धीरे धीरे उसमें से कामदेव प्रस्तर निर्मित ध्वंश हुए मन्दिर का निम्नभाग एवं अन्त में योनि मुद्रा सह मूलपीठ दिखाई दिया। महाराज के आनन्द की सीमा न रही। पूर्व्व के प्रस्तर निर्मित मन्दिर के ध्वंशावशेष भाग के ऊपर ही नये मन्दिर का निर्माण करने की योजना बनी।

देवी के मन्दिर का निर्माण कार्य व देवी महात्म्य प्रचार।

ऐसा कहा जाता है कि महाराज ने स्वर्ण मन्दिर निर्माण कराने की पूर्व्व कृति प्रतिज्ञा के प्रतिकूल ईंट द्वारा मन्दिर निर्माण का कार्य्य आरम्भ करवाया इस हेतु प्रत्येक रात्रि में दिनभर का निर्मित अंश गिर पड़ता था। इस विषय में किंबदन्ती है कि—एक दिन रात में एक रक्त वस्त्र परिहिता कुमारी आकर महाराज के सिरहाने बैठकर उससे कहने लगी—हे राजन्! पूर्व्व की प्रतिज्ञा एकबार पुनः स्मरण करो। स्वर्ण मन्दिर निर्माण की प्रतिज्ञा तुमने की थी। क्या वह याद नहीं है?" भयभीत राजा भक्तिभाव से बोला—'सन्तान का अपराध क्षम्य हो देवी। पर इतना

स्वर्ण कहां पाउँगा देवी ? महाराज की ऐसी कातर प्रार्थना सुन देवी सन्तुष्ट हुई और कहने लगी "किसी तरह की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रति ईंट के निकट एक एक रत्ती स्वर्ण देकर मन्दिर निर्माण करा।" ऐसा कह देवी अन्तर्ध्यान होगयी। खूब सवेरे उठकर राजा ने स्वप्न की बात सबसे कह सुनाई।

देवी के स्वप्नादेश के अनुसार निर्माण कार्य्य आरम्भ हुआ। यथा समय मन्दिर पूर्ण हुआ और निर्माण कार्य्य पूर्ण हुआ। उस समय 'बासत्तरिया' ब्राह्मणगण ही देश के सर्व्वोच्च ब्राह्मण समझे जाते थे। अतः महाराज ने उक्त ब्राह्मणों को लाकर मन्दिर में पूजा अर्च्चनादि की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त तन्त्र पुराण इत्यादि और अन्यान्य धर्म ग्रन्थों की भी चर्चा होने लगी। अभी भी उस समय की हस्तलिखित तन्त्र पुराण प्रभृति पुस्तकों के जीर्णावशेष पाये जाते हैं। उसी समय से यहां 'बासत्तरिया' ब्राह्मण देवी के आदि सेवक के रूप में निवास कर रहे हैं।

—:*:—

नरनारायण और चिलाराय की कहानी

१४८५ ई० के बाद १५३४ तक सुख्याति पूर्वक राज्य करने के पश्चात् महाराज विश्वसिंह की मृत्यु हो गयी। अत: उनके पुत्र मल्लदेव 'नरनारायण' के नाम से १५३४ ई० में कोच राज्य के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। नरनारायण ने अपने भाई शुक्लध्वज को युवराज घोषित कर प्रधान सेनापति के पदपर प्रतिष्ठित किया। यह पराक्रमी वीर ही चिलाराय के नाम से विख्यात हुआ। दोनों योग्य पिता के योग्य सुपुत्र थे। इन्होंने पिता के राज्य को बढ़ाया तथा पिता की असमाप्त कार्यावलियों को पूर्ण किया। इन्होंने १५४६ ई० में पितृवैरी 'अहोम' राजा को पराजित किया एवं आसाम में अन्यान्य राज्यों को जीत चारो दिशाओं में विजयी हुए।

महाराज विश्वसिंह के राजत्व के शेष काल में वङ्ग देश के आधिपत्य को लेकर बड़ी गड़बड़ चल रही थी। नशरत शाह के पुत्र फिरोज शाह १५३२ ई० में गौड देश में राज्य करते थे। उस समय महमूद शाह ने उनकी हत्या की तथा गौड़ का अधिपति हुआ। इसके उपरान्त शेरखाँ, शेरशाह) ने १५३८ ई० में उसे भगाकर गौड़पर आधिपत्य जमाया। इस समय पठान राज्य के अवसान

के लक्षण प्रतीत हो रहे थे। कुच-विहार के महाराज नरनारायण ने इसी अवसर पर दक्षिण पश्चिम में राज्य विस्तार का संकल्प किया। अहोम राजा के साथ जब उनका घोर संग्राम चल रहा था, उसी समय पठान सेनापति सुविख्यात 'कालापहाड़' ने १५५३ ई० में कामरूप पर आक्रमण कर दिया।

कालापहाड़ का आक्रमण एवं ध्वंसलीला।

स्वधर्म त्यागी कालापहाड़ का उद्देश्य देश जय करने की अपेक्षा हिन्दू धर्म का गौरव नष्ट करना ही अधिक था। अतः उसके मार्ग में जो भी हिन्दू मन्दिर एवं विग्रहादि पड़े उन सबों को वह तोड़ता गया। उसी समय विश्वसिंह द्वारा सुधराये हुए कामाख्या देवी के मन्दिर की विशेष ख्याति थी। इसने इसके उपरी भाग एवं अनेक प्राचीन मूर्तियों और विग्रहादिकों को भी विनष्ट कर दिया। ध्यान देने की बात है कि देवी मन्दिर के भीतर प्रस्तर निर्मित प्राचीर व अनेक स्तम्भ और मूर्तियाँ अभी भी क्षत-विक्षत अवस्था में है।

युद्ध में अन्यत्र फंसे रहने के कारण महाराज नरनारायण के लिये उस समय 'कालापहाड़' के आक्रमण को रोकना सम्भव न था।

मुसलमान राज्य 'श्रीहट्ट' जय करने के बाद में महाराज नरनारायण और चिलाराय ने काला पहाड़ से बदला लेने के लिये अभियान आरम्भ किया। उन्होंने मुसलमानों के गौड़

राज्य जीतने का संकल्प किया। युद्ध यात्रा करने के पूर्व दोनों भाई नीलाचल पर्व्वत पर महामाया कामाख्या देवी के दर्शन के निमित्त आये। परन्तु देवी के मन्दिर को शोचनीय अवस्था में देखा उनका मन अति क्षुब्ध हुआ। परन्तु युद्ध यात्रा में व्यस्थ रहने के कारण युद्ध के बाद कामना पूर्ण होने पर भली प्रकार मन्दिर का निर्माण करायेंगे ऐसा संकल्प कर अपने अनुज चिलाराय के नेतृत्व में गौड़ के बादशाह सुलेमान के विरुद्ध उन्होंने सैन्यदल भेजा, भीषण संग्राम के बाद चिलाराय प्रथम बार परास्त हुए एवं शत्रु द्वारा बन्दी बनाये गये।

इस विषय में जनश्रुति है तथा स्थानीय एक पुरोहित के पास के एक हस्तलिखित ग्रन्थ में भी उल्लेख है कि चिलाराय कुछ दिनों तक सुलेमान के कारागार में बन्दी रहे। उस समय एक बार उन्होंने स्वप्न देखा कि महामाया कामाख्या देवी के मन्दिर को भग्न अवस्था में देखकर भी उसके संस्कार की व्यवस्था किये बिना ही युद्ध में प्रवृत्त होने के कारण उनकी ऐसी दशा हुई है। अतः महाराज चिलाराय अत्यन्त विह्वल एकाग्र चित्त से महामाया के चरण कमल का ध्यान करने लगे। महामाया ने स्वप्न में आदेश दिया कि "कल नबाब की माता को साँप काट लेगा"। राज्य के सम्पूर्ण चिकित्सकों द्वारा अशेष चेष्टा करने पर भी कोई फल न होगा। तब अन्त में तुम्हारी

बुलाहट होगी। तुम उसे आरोग्य कर सकोगे ऐसा कहना" दूसरे दिन यही हुआ। चिलराय की बुलाहट हुई और उन्होने महामाया की कृपा से नवाब को माता को जान बचा दी। नवाब की माता ने चिलराय का निज पुत्रवत सम्मान कर बादशाह के साथ भ्रातृत्व स्थापन करने व शत्रुता भूल जाने का अनुरोध किया। इस तरह सम्मान के साथ चिलराय महामाया की कृपा से मुक्ति पा अपने देश को लौट आये। गौड़ देश से आकर उन्होंने पूर्ण वृतान्त लोगों को कह सुनाया। अब महाराज नरनारायण और चिलाराय देवी के भग्न मन्दिर का संस्कार करने में प्रवृत हुए। 'पहले मन्दिर निर्माण का भार महत्राम वैश्य नामक एक कर्मचारी के ऊपर सौंपा गया था। परन्तु अर्थहरण के अभियोग में दोषी होने के फलस्वरूप वह कार्य सेनापति 'मेघामकदुम' के अधीन सुसम्पन्न हुआ।" १५५५ ई० (१४७७ शक) में मन्दिर का निर्माण कार्य्य प्रारम्भ किया गया तथा इ० सन १५६५ (१४८७ शक) पूरा हुआ। इसके बाद महाराज मन्दिर उत्सर्ग के निमित्त महारानी भानुमति, राज अन्तःपुर की अन्य महिलाओं, अपने भाई शुक्लध्वज एवं उनकी अर्द्धाङ्गिनी चन्द्रप्रभा देवी के साथ नीलाचल पर्वत पर पधारे। महाराज ने पूर्ण समारोह के साथ नवीन मन्दिर में महामाया कामाख्या देवी की महापूजा सुसम्पन्न की। इस उपलक्ष में महाराज ने देवी की और पूजा

और अर्च्चना की व्यवस्था कर बहुत भूसम्पत्ति दान की। अनेक सेवक और पुजारी नियुक्ति किये एवं उनके भरण पोषण की व्यवस्था की। इस विषय में उक्ति है कि—

'तीनी लक्ष होम दिला* एक लक्ष बलि।
सातकुडि पाइक दिला करि ताम्रफलि ॥'

[दरंग राज्य वंशावली]

खान चौधरी अमानत उल्ला अहमत कृत 'कुचबिहार का इतिहास' के प्रथम खण्ड में लिखा है कि 'कामाख्या देवी की सेवा पूजा के निमित्त महाराज ने बंग देश से सुब्राह्मण लाकर व उन्हें प्रचुर भू-सम्पत्ति दानकर पुनः मन्दिर के निमित्त यथेष्ट देवोत्तर भूमि दान की। इसके अतिरिक्त दरंग राज्य वंशावली के अनुसार भी महाराज ने मन्दिर के अन्यान्य कार्य्यों के लिये यथा योग्य कार्य के लिए (पाइक) सेवक नियुक्त किये तथा उन्हें भी इस तरह पर्य्याप्त भूमि का दान किया।

अभी भी उन लोगों के वंशधर परम्परा से इस पीठस्थान की सेवा पूजा करते हुए निवास कर रहे हैं। देवी मन्दिर चलन्ता मूर्ति के मन्दिर के भीतर एक शीलालिपि ओर इन दोनों भाइयों की मूर्तियां खुदी हुई हैं जो उनलोगों द्वारा किये गये संस्कार कार्य की साक्षी दे रही है। कोच वंशीय महाराज

*दिला—नियुक्त किये। पाइक—जो देवी को पूजार्च्चना का आयोजन आदि करते हैं।

नरनारायण एवं चिलाराय की कीर्ति ज्ञापक शिलालिपि की प्रतिलिपि परिशिष्ट (१) में देखे।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि कुचबिहार के वर्त्तमान राजा भी कामाख्या देवी के विषय में सचेतन हैं। १८९७ ई० के भीषण भूकम्प में कामाख्या मन्दिर को अनेक क्षति होने पर मन्दिर संस्कार के लिये कुचबिहार राज दरबार की ओर से ३२००) रु० सहायतार्थ मिले थे।

किम्बदन्ती है कि केन्दूकलाई नाम के एक सिद्ध पूजक ब्राह्मण नित्य सन्धा समय पूजार्च्चना के बाद घन्टा ध्वनि के साथ आनन्द पूर्वक स्तोत्र पाठ किया करते थे। उस समय महामाया स्वयं उस भक्त ब्राह्मण को नित्य दर्शन दिया करती थी। महाराज को यह बात मालूम हुई तो वे भगवती की चेतन मूर्ति देखने के लिये व्याकुल हो राजधानी से निलाचल देवी पीठ में आये और इसके लिये उस ब्राह्मण से कातर प्रार्थना करने लगे। एवं नाना प्रकार से उसको लोभ दिखाया। ब्राह्मण ने राजा की कातर प्रार्थना से नितान्त निरुपाय हो कहा —'महाराज! भक्तिभाव से आराधना करने पर निश्चय ही देवी आपको दर्शन देगी क्योंकि देवी अपने भक्त के अधीन हैं। मुझसे आप क्यों अनुरोध कर रहे हैं?' पर राजा न माने और अधिकाधिक अनुनय विनय करने लगे। ब्राह्मण देव राजा की बारम्बार प्रार्थना सुन द्रवित हो गये। उन्होंने देवी की चेतन मूर्ति का दर्शन

कराने का आश्वासन दे राजा को एक गुप्त उपाय बताया। ब्राह्मण जब पूजादि कार्य्य सम्पादन कर संध्या समय घन्टा ध्वनि के साथ स्तोत्र पाठ में निमग्न हुए, ब्राह्मण द्वारा बताये गये उसी समय भोग मूर्ति के उतरावस्थित गवाक्ष से महाराजा निर्मिमेष लोचनों से देख रहे थे। सहसा मन्दिर के भीतर दिव्य आलोक प्रकाशित हुआ और साथ महाराज की आखें चौंधिया गई। सर्व्वज्ञा महामाया ने ब्राह्मण और महाराज के बीच की अभिसन्धि पर क्रुध हो ब्राह्मण के मस्तक पर चपेटा मारा एवं उसे पत्थर हो जाने का शाप दिया। महाराज नरनारायण के हीन आचरण पर असन्तुष्ट हो महामाया ने यह अभिशाप दिया कि राजा के वन्शधर इस महापीठ के दर्शन से सदा के लिये वञ्चित होंगे। इस पर्व्वत की ओर देखते ही उनका वंश लोप हो जायगा एवं भारी दुर्दशा होगी।

महाराज अभिशापग्रस्त एवं मर्माहत हो घर लौट आये। फलस्वरूप आज भी कुचबिहार राजा के वंशधर इस तीर्थ में नहीं आते।

देवी की सेवा पूजा के लिये कुचबिहार के राज भण्डार से प्रचुर अर्थ व्यय होता था, एवं नित्य तथा वार्षिक पूजायें भी विराट आयोजन के साथ सम्पादित होती थी। पर इसके बाद वे देवी की सेवा-पूजा की ओर से उदासीन होने लगे।

आहोम राजाओं द्वारा देवी महात्म्य पुनः प्रतिष्ठित

उत्थान तथा पतन जगत का एक अखण्ड नियम है। महाराज नरनारायण ने अपने राजत्व के शेषकाल में राज्य को अपने पुत्र लक्ष्मीनारायण व अनुज पुत्र रघुदेव में समान रूप से बाँट दिया। महाराज की मृत्यु के बाद दोनों ही अपना अपना राज्य करने लगे। परन्तु दोनों में विभेद पड़ने के कारण राज्य की अवस्था शिथिल हो गयी। इसी सुअवसर में यह राज्य पूर्व खण्ड के प्रतापी आहोम राजागण एवं पश्चिम प्रान्त के मुसलमान राजाओं द्वारा आक्रान्त हुआ। बहुत चेष्टा करने पर भी मुसलमान राजा इस देश में स्थायी रूप से राजत्व नहीं कर सके। सर्वोपरान्त आहोम वंशीय राजाओंने प्रायः ६०० वर्ष तक राज्यकिया। अतः कामरूप राज्य आहोम शब्द के कारण 'आसाम' राज्य के नाम से पुकारा जाने लगा। आज भी 'आसाम' तथा कामरूप के चारों ओर ग्राम-ग्रामान्तरों में आहोम राजाओं की गौरवोज्ज्वल कीर्ति गाथाएँ एवं मातृभूमि को विदेशियों से रक्षा करने के लिये निर्मित गहरी खाइयों से वेष्ठित प्राचीर एवं दुर्ग इत्यादि देखने में आते हैं। इन्होंने देव देवियों के लुप्त मन्दिरों का उद्धार किया है तथा जगह जगह अपनी कीर्ति ज्ञापक प्रस्तर लिपियां खुदवाई हैं। इसके अतिरिक्त उक्त धर्म स्थानादि में देवोत्तर

एवं ब्राह्मणोंत्तर भूमि दान की हैं। इसके निर्देश स्वरूप विविध स्थानों में ताम्र लिपियां एवं शिला लिपियां पायी जाती हैं।

आहोम राजाओंने कामरूप में बहुत से तीर्थ स्थानों का अन्वेषण कर वहां की सेवा पूजा का व्यय निर्वाह करने के लिये देवोत्तर एवं ब्राह्मणोंत्तर भूमि दान की हैं। परिशिष्ट में उनकी कई ताम्र लिपि एवं शिला लिपियों की प्रतिलिपियां दी गई है। आहोम राजाओंने नीलाचल पर्वत के ऊपर कामाख्या देवी की नृत्यशाला (नाट मन्दिर) निर्माण किया हैं। उक्त मन्दिरों के गात्र में दो शिलालिपि और ताम्रलिपि उन सबों की कीर्ति स्वरूप अवस्थित हैं। (परिशिष्ट में दोनों ही लिपियां (२) और (३) में द्रष्टव्य हैं।)

इसके अतिरिक्त उन्होंने यहां की दश महा विद्या का मन्दिर एवं शिव मन्दिर का भी संस्कार किया है। देव देवियों के मन्दिर में सेवा-पूजादि के लिये एवं पुजारियों और सेवकों के भरण-पोषण के लिये करमुक्त भूमि दान की हैं। स्थानीय एक ब्राह्मण के घर में उस समय की कामाख्या देवी के मन्दिर के "वरदेउरी गण" को दिया हुआ धनेश्वर के पुत्र हरदत्त का १६८६ शक सम्वत (१७६४ ई०) १२ श्रावन की ब्रह्मोत्तर भूमि दान विषयक ताम्रलिपि वर्तमान है। यह आहोम् राजा राजेश्वरसिंह प्रदत्त है। उक्त ताम्रलिपि की पीठ पर उस समय का प्राचीन भाषा में भी कोई विषय लिपि बध्द है* एक दूसरे ब्राह्मण के घर में

---

*कोई कोई पुराण तत्त्व वेता इसे आहोम लिपि कहते हैं।

१६८७ शक सम्वत् (१७६५ ई०) २१ फाल्गुन की एक ताम्रलिपि मन्दिर में नित्य चण्डि पाठ एवं पुजादि के लिये राजेश्वरसिंह प्रदत्त ब्रह्मोत्तर भूमि दान का निर्देशन कर रही है।

सम्भवत: आहोम राजाओं ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर प्रत्येक देव-देवीयों के मन्दिर में सेवा-पुजादि के जिन नियमों का प्रवर्त्तन किया; वही आज भी चले आरहे हैं। आहोम राज वंश के राजा रूद्रसिंह शक्ति मंत्र से दिक्षित होने की वासना कर वङ्ग देश से शान्तिपुर के 'शिमला' ग्राम के निवासी साधक वंशीय न्यायवागीश कृष्णानन्द भटाचार्य नाम के एक सिद्ध ब्राह्मण को यहाँ लाये। परन्तु किसी कारण वश दीक्षा ग्रहण न कर सके। १६३६ शक सम्वत् (१७१४ ई०) में रूद्रसिंह की मृत्यु हुई और उनके पुत्र शिवसिंह राजा हुए। पीछे शिवसिंह और उनकी अर्द्धाङ्गिनी फूलेश्वरी देवी रूद्रसिंह के पूर्व्व आदेश के अनुसार उक्त ब्राह्मण से शक्ति मन्त्र द्वारा दीक्षित हुई। गुरु दक्षिणा के रूप में उन्होंने उन्हें प्रचूर भूमि दान की और देवी महामाया के नीलाचल पर्व्वत पर उनके वासस्थान की व्यवस्था की। उसी समय से यह ब्राह्मण 'पर्व्वतिया गोस्वामी' के नाम से विदित हुए।

आहोम राजाओं ने जो 'दश महाविद्या' के मन्दिरों एवं शिव मन्दिरों का संस्कार किया उनमें से कितने ही पीछे जीर्णवस्था को प्राप्त हुए एवं भूकम्पादि में ध्वंश हुए। अत: इसके बाद दरभंगा प्रसिद्ध शक्ति साधक महाराज स्वर्गीय रामेश्वरप्रसाद सिंह ने उनसब भग्न मन्दिरों का पुनः संस्कार करवाया है।

नीलाचल पर आरोहण पथ का विधान

आरोहण–विधि—

पूर्वेतु धनकामस्तु राज्यकामस्तु पश्चिमे ।
उत्तरे मुक्तिकामस्तु दक्षिणे मरणं ध्रुवम् ॥

गृहस्थ व्यक्ति को पूर्व के द्वार से आरोहण करना चाहिये। पूर्व द्वार से आरोहण करने से धन की प्राप्ति होती है। उत्तर के द्वार से आरोहण करने से मुक्ति लाभ होता है। पश्चिम द्वार से आरोहण करने से राज्य लाभ होता है। परन्तु दक्षिण के मार्ग से आरोहण करने से मृत्यु होती है।

आरोहण मन्त्र

नीलशैल गिरिश्रेष्ठ त्रिमूर्ति-रूपधारक
तवाहं शरणं यातः पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

हे त्रिमूर्ति बिशिष्ट गिरिश्रेष्ट ! नीलशैल मैं तुम्हारे शरणागत होता हूँ। मेरे पादस्पर्श को क्षमा करना।

पहले नरकासुर निर्मित चारों ओर चार मार्ग थे। किन्तु उत्तर और पश्चिम दिशा में मार्ग संकीर्ण और दुर्गम होने के कारण उन पर यातायात नहीं होता था। वर्तमान काल में वे मार्ग प्रायः लुप्त हो गये हैं।

आसाम के पूर्व दक्षिण प्रान्त से आने में लामडिङ्ग जंक्शन होते हुए गौहटी स्टेशन तक रेल द्वारा आकर पुनः ३ मील (दुर्गा सरोवर) कामाख्या स्टेशन तक मोटर बस इत्यादि से आना पड़ता है। पहले पाण्डु एवं गौहाटी स्टेशन, दोनों ही दिशाओं से आने में यात्रियों को रेल से आने की सुविधा थी. परन्तु रेल की ओर से यह स्टेशन अब उठ गया है। अतः यह यात्रियों को एवं यहां के अधिवासीयों के लिये असुविधा का कारण हो गया है। वंग देश एवं उसके पश्चिम के अंचल से आने में आसाम लिङ्क रेल पथ से अमीनगांव स्टेशन तक आना पड़ता है। धनी यात्रियों के लिये आजकल विमान की सुविधा हो गयी है।

अमीनगांव से ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण में स्थित पाण्डूघाट से संलग्न नीलाचल का कामाख्या पर्व्वत दिखलाई पड़ता है। अमीनगांव से स्टीमर या नौका द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी पार हो पाण्डु स्टेशन आना पड़ता है। पाण्डु से नौका द्वारा भी पर्व्वत के किनारे कुछ दूर आकर भी पर्व्वत के उपर जाने का आधुनिक मार्ग मिलता है।

खासकर वर्षाकाल में इस रास्ते में से नौका द्वारा जाना विपदजनक है। द्वितीयतः पाण्डु गौहाटी रास्ता से आध मील के करीब पैदल चलकर पहाड़ के मूलसे चढ़ने का एक और मार्ग है।

नरकासुर निर्मित इस पर्व्वत पथ के बीच में द्वारपाल स्वरूप गणेशजी की मूर्ति है। उक्त स्थान से निर्मित इस खड़े मार्ग के

अतिरिक्त भी एक कच्चा मार्ग है। पाण्डु घाट से नौका द्वारा अग्रसर होनेपर पहाड़ पर चढ़ने का जो मार्ग मिलता है, वह उसी मार्ग में आकर आगे मिल गया है। दोनों ही मार्गों से आरोहण किया जा सकता है। साधरणतः पूर्व के मार्ग से ही यात्रीगण आरोहण करने में पाण्डु स्टेशन से कामाख्या स्टेशन तक तीन मील मोटर बस इत्यादि से आना पड़ता है। * यह पूर्व दिशा का मार्ग भी नरकासुर निर्मित है।

पूर्व्व दिशा की ओर का मार्ग प्रस्तर निर्मित है एवं प्रशस्त है। इसी मार्ग के मध्यभाग में सिद्धगणेश एवं अग्निवैताल नामक दो द्वारपालों की मूर्ति हैं। रास्ते के दोनों पार्श्व में पंक्तियों में चीन गुलाब फूल के गाछ उर्द्ध गामी प्रशस्त्र पथ की शोभा बढ़ा रहे हैं। इसके अतिरिक्त वृक्षों की छाया में पर्वता-रोहण करने में यात्रियों को पथश्रम कम होता है। कभी भी अधिक वेग से एवं सीधे पहाड़ पर नहीं चढ़ना चाहिये क्योंकि इस में अधिक श्रम होता है। सीधे टेढ़े धीरे धीरे चारों ओर के दृश्य अवलोकन करते हुए अग्रसर होने में स्वच्छन्द रूप से शीघ्र ही आरोहण किया जा सकता है। पहाड़ से उतरने के समय भी वेग पूर्वक नहीं उतरना चाहिये। इसमें पैर फिसल जाने की आशंका रहती है।

---

* उक्त राज्य के पास 'काटिङ्ग' नामक स्थान पर अवस्थित आहोम राजा शिवसिंह की कीर्ति ज्ञापक शिलालिपि की प्रतिलिपि प्ररिशिष्ठ (४) में द्रष्टव्य है।

वर्तमान सरकार ने बहुत अर्थ खर्च करके जन साधारण की सुविधा के लिए मोटर गाड़ी यातायात के लायक एक पक्का रास्ता कामाख्या पहाड़ के गांवों से होता हुआ निर्माण किया है। यह रास्ता कामाख्या मन्दिर के निकट होकर सर्वोच्च श्रृङ्ग भूवनेश्वरी तक गया है।

कामाख्या देवी का मन्दिर तथा सौभाग्य कुण्ड

पर्व्वतारोहण कर सर्व प्रथम अपने अपने वंश के तीर्थ पुरोहित (पण्डा) का सन्धान करना प्रत्येक यात्री का कर्तव्य है। यह भी तीर्थ का एक प्रधान कर्म है एवं सनातन धर्म के अनुसार प्राचीन काल से यही प्रथा चली आरही है। इससे अनेक सुविधायें हैं। जिस स्थान में जो नियमावली हो उसी का पालन करना धर्म है। अपने अपने घरों में यात्रियों के वास-स्थान के लिये भी स्थान है। आसाम का प्रसिद्ध नगर गौहाटी निकट ही अवस्थित होने के कारण यात्रियों को यान-वाहन तथा द्रव्यादि के विषय में असुविधा नहीं होती।

प्राचीन प्रथा के अनुसार यात्रीगण भोज्य सामग्री एवं दक्षिणादि अपने अपने तीर्थ गुरू के हाथ सौंप देवी के दर्शन,

भोग एवं पूजादि कार्य्य सम्पादन करने के उपरान्त गुरू के घर में प्रसाद ग्रहण करने का नियम था। अभी भी अनेकों द्वारा यह नियम पालन करने पर भी भोज्य सामग्री के बदले नगद दक्षिणा भी दी जाती है।

गुरू गृह आये हुए शिष्यों की अन्न सेवा करना भी गृहस्थाश्रम का एक प्रधान धर्म है। अतः कामाख्या तीर्थ वासी ब्राह्मण गण प्राचीन आर्य्य जाति के गुरू शिष्य के आचार नियम आदि पालन कर चिर पवित्र धर्माचरण के अपूर्व नेत्र-स्थान में दूरदेशों से आगत तीर्थ यात्रियों को निज निज घर में वासस्थान एवं आहारादि की सुव्यवस्था कर संतुष्ठित करते हैं।

पूर्व के आदि तीर्थ गुरू के हिसाब से गुरू के घर में विश्राम एवं तीर्थ कार्य्यादि के सम्बन्ध में परामर्श ग्रहण करने के उपरान्त अपनी अपनी क्षमता के अनुसार शुद्ध चित्त एवं भक्ति भाव से तीर्थ कृत्य प्रतिपालन करना तीर्थ यात्रीगण का एक मात्र कर्त्तव्य है। तीर्थ फल लाभ का यही प्रकृष्ट उपाय है। यथा—

तीर्थयात्रां समासाद्य यद्देकोऽप्यत्र गच्छति
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
(योगिनी तन्त्र / एकादश पटल २०)

"तीर्थ यात्रा अवलम्बन कर जो कोई इस तीर्थ में आगमन करते हैं उन्हें पग पग पर अश्वमेघयज्ञ फल की प्राप्ति होती है—"

इस तीर्थ में आकर पूर्व्व पुरुषों की आत्मा की सद्गति के लिये यथा शक्ति पार्वण-श्राद्ध-गौरीशिखर पूजा, देवी दर्शन,

एवं पूजा, पाठ होम इत्यादि अनुष्ठान करना, भौगादि भोज्य दान षोडशदान, कुमारी पूजा, सधवा पूजा, कुमारी भोजन, सधवा भोजन, ब्राह्मण भोजन एवं दश महाविद्याओं का दर्शन पूजन करने का तीर्थ कृत्य अनुष्ठान करने की प्रथा प्रचलित है। शास्त्रानुकूल यहाँ बलि प्रथा भी है। कामाख्या देवी के नित्य पूजा के अङ्ग स्वरूप प्रतिदिन एक बकरे की बलि होती है। इसके अतिरिक्त खास खास उत्सवों के उपलक्ष में बहुत से छाग, महिष, एवं कबूतरों की बलि दी जाती है। पूजादाता की इच्छानुकूल कभी कभी पशु-पक्षी उत्सर्ग मात्र भी किये जाते हैं। उनकी बलि नहीं दी जाती।

कामाख्या देवी के मन्दिर के सन्निकट उत्तर की ओर देवी की क्रीड़ा पुस्करणी सौभाग्य कुण्ड अवस्थित है। कहा जाता है कि यह इन्द्र आदि देवताओं द्वारा बनाया गया है। यथा—

> क्रीड़ा-पुस्करिणी सा हि कामाख्यायाः सुरेश्वरि ।
> शक्रेणोत्पादितं कुण्डं सह देवैर्म्महेश्वरि ॥

(योगिनीतन्त्र। द्वितीय भाग षष्ठ पटल। १००)

तीर्थ फल प्राप्ति के निमित्त विधि पूर्वक सौभाग्य कुण्ड के निकट ही पश्चिम की ओर स्नान, तर्पण, श्राद्ध और मुण्डन करना विधि विहित है। इस कुण्ड की प्रदक्षिणा करने से पृथ्वी प्रदक्षिणादि का फल प्राप्त होता है।

सौभाग्यकुण्ड में कृत्यस्नान का मन्त्र

पृथिव्यां यानि तीर्थानि त्वयि तिष्ठन्ति सर्व्वदा ।
तस्मात पुनीहि मां कुण्ड देवदानव पूजित ॥
सर्व्व तीर्थमयस्त्वं हि सर्व्वक्षेत्रमयो ह्यसि ।
दशपूर्व्वान दशपरान वन्शानुद्धर पापतः ॥
(कृत्यांञ्जलि पूर्व यह मन्त्र पाठ करना चाहिये ।)

संकल्प-वाक्य

विष्णुरोम तत्सदद्य अमुके मासि, अमुक पक्षे, अमुक तिथौ अमुक गोत्रः श्रीअमुक देव शर्मा (स्वनाम) दशपूर्व्व-दशपरात्म सहैकविंशतिपुरुषाद्धारणकामः पृथिव्याधिकरणक सर्व्वतीर्थ-स्नान—जन्य—फल समफलप्राप्तिकामः अस्मिन् सौभाग्य कुण्डे स्नानमहं करिष्ये ।

अर्घ्यदान-मन्त्र

नमः सौभाग्यकुण्डाय सर्व्वपाप हराय च ।
सर्व्वक्षेत्रमयेशाय गृह्णार्घ्यं मोचयैनसः ॥

स्नान-मन्त्र

सौभाग्ये सलिलावर्त्ते विमले मानसप्रिये ।
नमो गां गों वषट् स्वाहा पापं हर नमोऽस्तुते ॥

गणेश दर्शनक्रम

साधारणतः सर्वप्रथम इस कुण्ड में संकल्प एवं मन्त्रादि पाठ करें । फिर पास ही कुण्ड के तीर पर अवस्थित गणेशजी की

मूर्ति के दर्शन एवं मन्त्रादि पाठ कर महामाया कामाख्या का दर्शन करने के लिये मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये।

प्रणाम-मन्त्र

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

स्पर्श-मंत्र

पापोहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्वपापहरो भव॥

अनुज्ञा-मन्त्र

नमस्ते गणपते देव महाभैरव रूपिणे।
अनुज्ञां देहि में नाथ कामाख्यादर्शनं प्रति॥

कामाख्या—दर्शनक्रम

कामाख्या देवी के मन्दिर में प्रवेश करते ही सामने १२ प्रस्तर स्तम्भों के बीच देवी की चलन्तामूर्ति परिलक्षित होती है। इसी का दूसरा नाम "हरगौरी-मूर्ति अथवा भोगमूर्ति" है।

प्रणाम-मंत्र

कामाख्ये कामसम्पन्ने कामेश्वरि हरप्रिये।
कामनां देही मे नित्यं कामेश्वरि नमोऽस्तुते॥

अनुज्ञा-मन्त्र

कामदे कामरूपस्थे सुभगे सुरसेविते।
करोमी दर्शनं देव्याः सर्व्वकामार्थसिद्धये॥

यह चलन्ता हर-गौरी वा भोग मूर्ति अष्टधातुमयी है एवं प्रस्तर निर्मित पञ्चस्तर विशिष्ट एक सिंहासनारूढ़ हैं। मूर्ति इस प्रकार है उत्तर में वृषभ वाहन पञ्चवक्त्र एवं दशभुज विशिष्ट कामेश्वर महादेव अवस्थित हैं तथा दक्षिण भाग में षड़ानन द्वादशबाहु विशिष्टा अष्टादशलोचन सिंहशव-पद्मासना देवी महामाया कामेश्वरी नाम से विख्यात है।

विष्णुब्रह्मशिवैर्दुर्देवैर्ध्रियते सा जगन्मयी।
सितप्रेतो महादेवो ब्रह्मा लोहितपंकजम्॥
हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः।
स्वमूर्त्ता वाहनत्वन्तु तेषां यस्मान्न युज्यते॥

(कालिका पुराण । अष्टपञ्चाश अध्याय। ६६)

वही जगन्मयी कामेश्वरी ब्रह्माविष्णु एवं शिव कर्तृक धृत है। महादेव ही यहां सितप्रेत (शव रूप) ब्रह्माही लोहित पंकज एवं विष्णु ही सिंह है; और ये तीनों ही उस महातेजोमयी देवी के वाहन हैं। अपनी अपनी मूर्ति के रहते हुए वाहन होने का युक्ति सिद्ध न होने पर ये लोग अन्य मूर्तियों में देवी के वाहन बने हुए हैं।

जो साधक इस मूर्ति का ध्यान करते हैं उनके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी पूजित होते हैं।

वार्षिक उत्सवों एवं पर्वादिकों में यही चलन्ता मूर्ति भ्रमण करायी जाती है। यात्रीगण पहले कामेश्वरी एवं कामेश्वर शिव

का दर्शन कर पुनः देवी महामुद्रा का दर्शन करते हैं। देवी को योनि मुद्रा पीठ दश सोपान नीचे अन्धकार पूर्ण गुहा में होने के कारण वहां सर्वदा दीप प्रज्वलित होता रहता है।

कामाख्या देवी का प्रणाम—मन्त्र

कामख्ये वरदे देवो नीलपर्वतवासिनि।
त्वं देवी जगतां मातर्योनिमुद्रे नमोऽस्तुते ॥

स्पर्श-मन्त्र

मनोभवगुहामध्ये रक्तपाषाणरूपिणी।
तस्याः स्पर्शनमात्रेण पुनर्ज्जन्म न विद्यते ॥

चरणामृत पान—मन्त्र

शुक्रादीनांच यज् ज्ञानं यमादिपरिशोधितम्।
तदेव द्रवरूपेण कामाख्या योनिमण्डले ॥

देवी महामाया की इस मूर्ति से जो जैसी कामना करते एवं देवी को तुष्ट करने के हेतु जप, पूजा पाठादि करते हैं देवी उनके मन की अभिष्ट कामना उसी रूप से सिद्ध करती है। जो भक्ति भाव से देवी के योनि मण्डल का दर्शन स्पर्श एवं मुद्रा का जल पान करते हैं वे देवऋण; पितृऋण एवं मातृऋण से मुक्त होते हैं। यथा --

ऋणानि त्रीण्यपाकर्त्तुं यस्य चित्तं प्रसीदति।
स गच्छेत् परया भक्त्या कामाख्यायोनिसन्निधिं ॥

(योगिनी तन्त्र। एकादश पटल। १६)

"पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण—इन तीन ऋणों का परिशोध करने की जिसे चाह हो वह परम भक्ति भाव से कामाख्या योनि मण्डल के निकट आवेगा।"

गवांकोटिप्रदानात्तु यतफलं जायते नृणाम।
तत्फलं समवाप्नोति कामाख्यां पूजयन्नरः॥
(कालिका पुराण। पंचषष्ठितम् अध्यायः ५४)

कोटि गो दान करने से मनुष्य को जो फल होता है वही कामाख्या देवी की पूजा करने से प्राप्त होता है।

चार वर्गक्षेत्रविशिष्ट शिलापीठ जहाँ सदा सर्वदा पाताल से जल निकलता रहा है वहा कामाख्या का योनि मण्डल है। इस योनि मण्डल का परिमाण एक हाथ लम्बा बारह अंगुल चौड़ा, सप्तासीति धनू—परिमित रूक्षरक्त सपुलक अष्टहस्त एवं पंचाश सहस्त्र पुलकान्वित शिवलिगं युक्त है यथा—

शप्ताशीति धनुर्म्मानं रूक्षरक्तशिला च या।
अष्टहस्तं सपुलकं लिंग लक्षार्द्ध संयुतम्॥
चतुर्हस्तसमं क्षेत्र. पश्चिमे योनिमण्डलम्।
बाहुमात्रमितञ्चैव प्रस्तारे द्वादशांगुलम्॥
आपातलं जलं तत्रं यौनिमध्ये प्रतिस्थितम्॥

(योगिनीतन्त्र। द्वितीय भाग। षष्ठ पटल १३०-१३१)

मातृअंग होने के कारण इसका अर्द्ध भाग सोने के टोप के ऊपर कपड़ा एवं पुष्पामाल्यादि द्वारा आवृत एवं सुशोभित रखा

जाता है। दर्शन, स्पर्श एवं जप पूजादि के लिये केवल एक अंश उन्मुक्त रखा जाता है। मातृअंग निपतित होकर यहाँ अवस्थित होने के कारण इस महातीर्थ को शक्तिपीठस्थान कहा जाता है। यह सभी तीर्थों में प्रधान है।

इसे सर्व्व प्रधान शक्तिपीठ तथा तान्त्रिक क्रिया पद्धति का केन्द्र समझकर साधक और उपासक कामाख्या देवी का दर्शन एवं उपासन करना जीवन का महान कर्त्तव्य मानते है। पुण्य भारत भूमि के अनेक महापुरुषों ने इस तीर्थ स्थान में आकर सिद्धिलाभ की है। इसके अनेकों प्रमाण मिलते हैं। आज भी उक्त सिद्ध पुरुषों के वंशधरगण यहाँ आते हैं तो यहाँ अपने पूर्व्व पुरुषों की कहानी वर्णन करते हैं।

लक्ष्मी सरस्वती

महामाया की दशमहाविद्या वा विभूति के अन्तर्गत 'षोड़शी' कामाख्या देवी का ही नामान्तर है एवं वे ही देवी-पीठ में अवस्थित है। इसी देवी-पीठ से संलग्न पूर्वप्रान्तर में मातङ्गी (सरस्वती) एवं कमला (लक्ष्मी) देवी का पीठ-स्थान है।

प्रणाम-मन्त्र

सदाचार प्रिये देवी शुक्लपुष्पाम्बरप्रिये।
गोमयादिशुचिप्रीते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः।
वेदवेदान्तवेदाङ्ग-विद्यास्थानेभ्य एव च॥

स्पर्श-मंत्र

मध्ये च कुब्जिके देवि प्रान्ते प्रान्ते च भैरवी।
एकैक स्पर्शनात् देव्याः कोटिजन्माघनाशनम् ॥

इसके बाद महामाया का दर्शन पूजादि करके चलन्ता मन्दिर के चारों ओर मन्दिर के गात्र में मङ्गलचण्डो, कल्कि अवतार, युधिष्ठिर, श्रीरामचन्द्र, बटुक-भैरव, नारायण गोपाल कोच विहार के महाराजा नरनारायण की प्राचीरमूर्ति, नील कण्ठ महादेव, नन्दी, भृङ्गी, कपिलमुनि, मनसादेवी, जरत्कारु मुनि, कोचविहार महाराज (दोनों ही) की मन्दिर निर्माणादि विषयक कीर्ति ज्ञापक शिलालिपि एवं पंचरत्न मन्दिर की चामुण्डा का दर्शन करना चाहिये।

चामुण्डा का प्रणाम-मन्त्र

ॐ महिषाघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनी।
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं देहि में परमेश्वरि ॥
(देहि देवि नमोऽस्तुते)

इसके बाहर भी नाटमन्दिर के भीतर आहोम राजा राजेश्वर सिंह और गौरीनाथ सिंह की शिला और ताम्र लिपियाँ हैं।

यात्रियों के तीर्थ कार्य्यादि, विशेष कर कुमारी पूजा, दान भोज्यत्सर्ग आदि अनुष्ठान इसी पंचरत्न मन्दिर के भीतर तीर्थ पुजारीगण सम्पादन करवाते हैं।

कुमारीपुजा

महातीर्थ कामाख्या में महामाया कुमारीरूप में विराजमान हैं। यात्रीगण देवीभाव से कुमारी पूजा कर कृत कृत्य होते हैं ज़िस तरह प्रयाग में मुण्डन एवं काशी में दण्डी भोजन कराने का नियम है उसी तरह कामाख्या में कुमारी पूजा करने से सर्व देव देवियों की पूजा करने का फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कुमारी पूजा करने से पुत्र लाभ, धन लाभ, पृथ्वी लाभ, विद्या लाभ, एवं अनायास ही मन की सभी इच्छाओं की पूर्ति होती है। यथा—

सर्वविद्यास्वरूपा ही कुमारी नात्र संशयः।
एका हि पूजिता बाला सर्वं हि पुजितँ भवेत ॥
[योगिनी तन्त्र। सप्तदश पटल। ३३]

कुमारी सर्वविद्या स्वरूपा है इसमें सन्देह नहीं। एक कुमारी पूजा करने से सम्पूर्ण देव देवियों की पूजा का फल होता है।

ध्यानम्

ॐ बालरूपांच त्रैलोक्य सुन्दरीं वरवर्णिनीम्।
नानालंकारनम्राङ्गीं भद्रबिद्याप्रकाशिनीम् ॥
चारुहास्यां महानन्द हृदयां चिन्तयेत् शुभाम् ॥

आवाहनम्

ॐ मन्त्राक्षरमयीं देवीं मातृणां रूपधारिणिम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कण्यामावाहयाम्यहम् ॥

प्रणाम-मन्त्र

ॐ जगद्वन्दे जगतपूज्य सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारी जगन्मातर्नमोऽस्तुते ।

देवी मन्दिर का प्रदक्षिण-मन्त्र

यानि यानीह पापानी जन्मान्तरकृतानिच ।
तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

कम्बलेश्वर

कामाख्या देवी के मन्दिर के चारों पार्श्व में पर्वत के ऊपर विभिन्न स्थानों में दश महाविद्या के मन्दिर में देवी के नव योनिपीठ के अन्तर्गत अन्य सात पीठस्थान विद्यमान हैं । पंचानन के पाचों मुख की ओर पाँच शिव मन्दिर विद्यमान है । कम्बलेश्वर नाम का विष्णु मन्दिर देवी मन्दिर के सन्निकट अवस्थित है। यहाँ भगवान विष्णु कम्बलाख्य नाम से प्रसिद्ध हैं । इसके वाहर भी कामेश्वर और सिद्धेश्वर के मन्दिर के बीच में केदारक्षेत्र* और उक्त दो मन्दिरों के दक्षिण प्रान्तर में कुछ दूरी पर वन के बीच वनवासिनी, जयदुर्गा तथा ललिता कान्ता के नाम से तीन शिलापीठ विद्यमान है ।

(* केदार क्षेत्र में आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (५) परिशिष्ट में देखने योग्य है ।)

कम्बलेश्वर प्रणाम-मंत्र

नमो नमस्ते देवेश श्याम श्रीवत्सभूषित ।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पुरुषोत्तम ॥
देवदानवगन्धर्वपादपद्मार्चित प्रभो ।
नमो वरदालिङ्गाय कम्बलाय नमो नमः ॥

अनुज्ञा–मन्त्र

नमस्ते कम्बलेशाय महाभैरवरूपिणे ।
अनुज्ञां देहि मे नाथ कामाख्यादर्शनं प्रति ॥

दश महाविद्याओं का पौराणिक प्रसंग

दक्ष प्रजापति के यज्ञ के समय पित्रालय गमनार्थ प्रार्थाभूता सती देवी स्वामी महादेव की अनुमति पाने के लिये बहुविधि प्रयत्न कर भी असफल रही। तदुपरान्त वे भीषण क्रोध दीप्त नयनों से महादेव की ओर देखने लगी। भूतनाथ दक्षायनी सती देवी के भीषण लोचन त्रय देख अत्यन्त मुग्ध हुऐ एवं देखा कि उनके तीसरे नेत्र से भयानक अग्निराशि निकल रही है। इस तरह चार हस्त का रूप धर महाज्योतिमयी श्यामा मूर्ति में परिवर्त्तित हुई। महेश्वर ऐसा रूप देख धैर्य्यहीन एवं निरूपाय हो पलायन करना ही श्रेय समझ उर्द्धश्वास में भागने लगे।

दक्षायनी उन्हें भयभीत हो पलायन करते देख 'माभैः माभैः' ऐसा आश्वासन देने लगी। किन्तु महादेव को इतने पर भी आश्वस्त होते न देख देवी दाक्षायनी ने दशों दिशाओं में दशमूर्ति धारण कर भूतनाथ के सभी मार्ग रुद्ध कर दिये। यथा—

तं धावमानं गिरीशं दृष्ट्वा दाक्षायनी सती ।
मा भैर्माभैःरिति गिरा मा पलायेत्यूवाच सा ॥
तथाप्येनं पलायन्तं ह्यनिवृत्तं बिलोक्यह ।
दशमूर्त्तिर्बभौ देवी दशदिक्षु शिवेक्षिता ॥

(बृहत्धर्मपुराण । मध्य खण्ड । षष्ठ अध्यायः । ७३-७४)

भूतनाथ जिधर जाते उधर ही दक्षायनी देवी की पृथक पृथक मूर्ति देख अतिशय भयभीत होते । सती देवी की भयावह विभूतियाँ देख सदाशिव स्थिर हो सती देवी को मायके जाने की अनुमति दे प्रकृतिस्थ हुए।

इन दशमहाविद्याओं का नाम काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी एवं कमला है ये ही भक्तों की मुक्तिदायनी हैं। यथा—

काली तारा महाविद्या षोड़शी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥

—चामुण्डातन्त्र ।

दशमहाविद्याओं का दर्शन क्रम

कामाख्या देवी (षोड़शी), मातङ्गी (सरस्वती), कमला (लक्ष्मी) इन तीन पीठों का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। यहाँ और अन्य सात पीठों का वर्णन कर रहे हैं। इन सात महाविद्याओं के पीठ मन्दिर भिन्न भिन्न स्थानों में अवस्थित है। इनके अतिरिक्त कामेश्वर, सिद्धेश्वर, कोटिलिङ्ग, अघोर और आम्रातकेश्वर महादेव के ये पंच शिला पीठ विभिन्न मन्दिरों में विद्यमान है। इन सात महाविद्याओं का एवं शिव के पंच पीठ स्थानों का अवस्थान एवं प्रणाम-मन्त्र नीचे लिखा जाता है।

काली

कामाख्या एवं कामेश्वर मन्दिर के मध्यस्थान में देवी कालिका, दीर्घेश्वरी पीठ नाम से विख्यात है।

प्रणाम—मंत्र

नमो दीर्घेश्वरीं देवीं सर्व्वकाम फलप्रदाम्।
दीर्घाकार-कुण्डयुतां सिद्धिं यच्छ सुरेश्वरि॥
कालि कालि महाकालि कालिके पापनाशिनि।
खड्गहस्ते मुण्डहस्ते कालि कालि नमोऽस्तुते॥

तारा

कामाख्या एवं काली मन्दिर के बीच अवस्थित देवी तारा उग्रतारा के नाम से विख्यात है।

प्रणाम-मन्त्र

प्रत्यालीढ़पदे घोरे मुण्डमालोपशोभिते।
खर्व्वे लम्बोदरि भीमे उग्रतारा नमोऽस्तुते॥

भुवनेश्वरी

कामाख्या देवी के मन्दिर के बाहर अन्य सात महाविद्याओं के मन्दिर है इनके बीच भुवनेश्वरी मन्दिर नीलाचल पर्व्वत के सर्व्वोच्च शृङ्ग पर अवस्थित है। इसी हेतु यह मन्दिर विशेष रूप से प्रधानता को प्राप्त है। कामाख्या पर्वत का यह सर्व्वोच्च शृङ्ग ब्रह्म पर्व्वत के नाम से पुराणों में प्रसिद्ध है। एवं यही देवी महागौरी 'भुवनेश्वरी' के नाम से मन्दिर के बीच अवस्थित है। अतः इस शृङ्ग को भुवनेश्वरी पर्वत कहते हैं। इस स्थान में खड़े होकर चारों ओर दृष्टिपात करने से प्राकृतिक सौन्दर्य राशि स्वर्गीय आनन्द प्रदान करती है। इसकी उचाई ६९० फीट है एवं यह कामाख्या मन्दिर से १६५ फीट की उचांई पर अवस्थित है। इस पर्वत शिखर पर आकर उत्तर की ओर दृष्टिपात करने पर हिमालय के तुषार मण्डित शुभ्र शृङ्गों का दर्शन होने लगता है। दिगन्त प्रसारित यह मनोहर दृश्य मन एवं प्राणों को एक अनजान मधुमय लोक में खींच ले जाता

है। ब्रह्मपुत्र नदी की अविरल गति ऐसी लगती है मानो कामाख्या देवी का गुणगान करती हुई वह पर्वतों के पवित्र पद् देश को प्रक्षालित करती कामाख्या देवी की महिमा दूर दूर तक अविराम गति से प्रचार कर रही है। इस पर्वत पर आरोहण से परिश्रान्त यात्रिगण मन्दिर के पीछे पूर्व की ओर
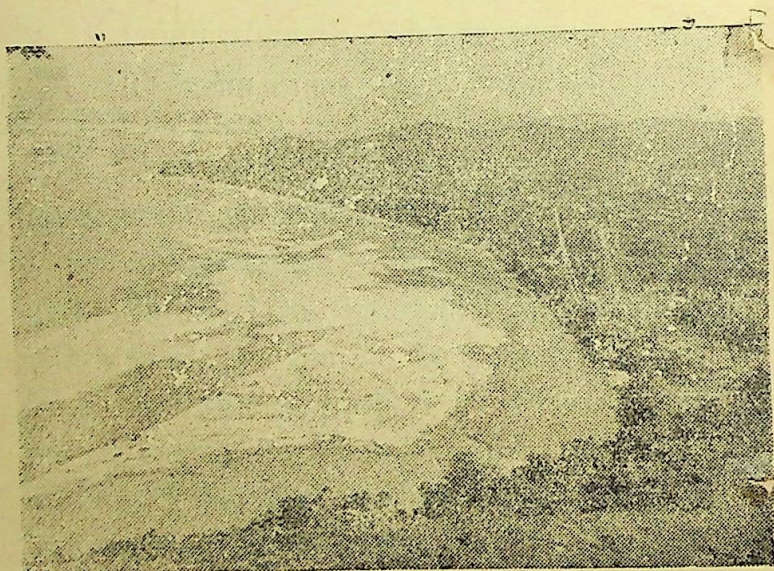
(भुवनेश्वरी शृङ्ग से ब्रह्मपुत्र और गोहाटी का दृश्य)

बैठ कर शीतल समीर एवं प्राकृतिक सौन्दर्य उपभोग कर परम शान्ति लाभ करते हैं! इस शृङ्ग के ऊपर से चारों ओर दृगपात करने पर ब्रह्मपुत्र नदी के पादमूल स्पर्श प्रवाह भङ्गिमा शष्य श्यामल मैदान, गाँवों के धुन्धले से दृश्य: ब्रह्मपुत्र मध्यस्थ

'उमानन्द भैरव' का मनोरम दृश्य, नद के आरपार अश्व क्रान्त मन्दिर की चित्ताकर्षक शोभा, दिग्व्यापी पर्वतों को शोभा, गौहाटी का सुदूर प्रसारित नागरिक दृश्य, मोटर इत्यादि यातायात के साधनों एवं मनुष्यों के आवागमन की शोभा तथा रेल गाड़ियों का प्रसर्पण इत्यादि दृश्य बड़े मन भाते हैं। तथा इससे पाषाण हृदयी के मन में भगवती की सत्ता का भाव स्फुरित होता है।

प्रणाम मन्त्र

भुवनेशीं महामायां सूर्य्यमण्डलरूपिणीणम्।
नमामि वरदां शुद्धां कामाख्यारूपिणीं शिवाम् ॥

भैरवी

कामाख्या देवी के मन्दिर के दक्षिण निम्नभाग में भैरवी मन्दिर अवस्थित है। इस पीठ के उत्तराङ्ग में हर पश्चिमाङ्ग में विष्णुरूपी हेरूक एवं दक्षिणाङ्ग में त्रिपुरा भैरवी है। यथा—

त्र्यंशश्च दृश्यते तत्र उत्तराङ्गँ हरं श्रुतम्।
पश्चिमाङ्ग हेरुकंच विष्णुरुपिणामव्ययम् ॥
भैरवी दक्षिणांशश्च त्रिपुरेत्यभिधीयते।
(योगिनीतन्त्र। द्वितीय भाग। अष्टम पटल १४-१५)

इस स्थान के भैरवी कुण्ड में बहुत कच्छप हैं कौतुक प्रिय यात्रीगण इन कच्छपों को कुछ कुछ खाने को वस्तु प्रदान कर आनन्द उपभोग करते हैं।

प्रणाम-मन्त्र

ईश्वरस्त्वां नमस्तेऽस्तु पार्वती प्रीतिवर्द्धन ।
कामेश्वर नमोस्तेऽस्तु कामनाशेषदायक ॥

सिद्धेश्वर

कामेश्वर मन्दिर के पूर्व भाग में ईशान नाम के शिव सिद्धेश्वर नाम से विख्यात है।

प्रणाम-मन्त्र

सिद्धेश्वर नमोस्तेस्तु सर्व्वसिद्धिप्रदायक ।
तत्राहं शरणं यातः सिद्धेश्वर नमोऽस्तुते ।

कौटिलिङ्ग

कामेश्वर मन्दिर के उत्तर प्रान्त में 'तत् पुरुष' नाम के शिव 'कौटि लिङ्ग' नाम से विख्यान है।

प्रणाम-मन्त्र

प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च ।
नमः सहस्त्रशीर्ष्याय कौटिलिङ्ग नमोऽस्तुते ॥
नमो भगवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च ।
नमो यज्ञाधिपतये कौटिलिङ्ग नमोऽस्तुते ।

अघोर

भैरवी मन्दिर के भीतर हेरुक भैरव, अघोर नाम से विख्यात है।

प्रणाम—मन्त्र

देव-दानव यक्षेशं हेरुकं शिवरुपिणम् ।
नमामि पूजितं शान्तं मम सिद्धार्थहेतवे ॥

आम्रातकेश्वर

कामाख्या देवी के मन्दिर के पश्चिम की ओर निम्न भाग में एवं दुर्गाकूप के पूर्व में सद्योजातशिव, "आम्रातकेश्वर" के नाम से विख्यात है। इनके निकट ही में सिद्ध गंगा नाम की जल धारा विद्यमान है।

प्रणाम—मन्त्र

सद्योजातं प्रपद्‌यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नादिभते भवद्‌भवाय वै नमः ॥

(मन्दिर के मध्य में आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (६) परिशिष्ट में देखें।)

तीर्थ के वार्षिक मेले एवं उत्सव

प्रतिवर्ष देवी के मन्दिर में पर्व के उपलक्ष में उत्सव पूजा आदि कार्य्य समारोह के साथ अनुष्ठित होते हैं। नीचे प्रधान प्रधान उत्सवों का वर्णन किया जाता है :—

पुष्याभिषेक—पौष मास में पुष्याभिषेक उत्सव अर्थात हरगौरी का विवाह महोत्सव होता है। यह उत्सव पौष मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया व तृतीया तिथि में पुष्य नक्षत्र के योग में होता है।

अम्बुवाची—ज्योतिष शास्त्र के अनुसार, आषाढ़ के महीने में मृगशिरा नक्षत्र का तृतीय चरण बीत जाने पर चतुर्थ चरण में आर्द्रा नक्षत्र के प्रथम पाद के मध्य में पृथ्वी ऋतुमति होती। इसी समय को अम्बुवासो कहते हैं। इसी हेतु देवी का मन्दिर तीन दिन बन्द रहता है। दर्शनादि नहीं होते। चौथे दिन देवी का मन्दिर खुलता है एवं स्नान पूजादि समाप्त हो जाने पर यात्रियों को दर्शन करने दिया जाता है। साधणतः प्रतिवर्ष ६ या ७ आषाढ़ से १० या ११ आषाढ़ तक यह योग रहता है। इसके उपलक्ष में भारतवर्ष के सुदूर स्थानों से असंख्य यात्रियों का समागम होता है। अम्बुवाची योग में जगतमाता कामाख्या देवी के रक्तवस्त्र का हिन्दुओं में काफी महात्म्य है। उक्त रक्तवस्त्र शरीर पर धारण करने से अभीष्ट फल लाभ होता है। इसके अतिरिक्त कामाख्या का रक्त वस्त्र धारण कर अन्य जगह भी पूजा करने से भक्तों की कामना पूर्ण होती है।

कामाख्यावस्त्रमादाय जप पूजां समाचरेत्।
पूर्णकामं लभेद्देवि सत्यं सत्यं न संशय ॥

(कुब्जिकातन्त्र। सप्तम पटल।)

देवध्वनि—कामाख्या में जितने उत्सव होते हैं उनमें "देवध्वनि" या "देऊधनी" एक अन्यतम् उत्सव है। इसमें देवताओं के उद्देश्य से ढोल, ढाक, करताल, इत्यादि नाना प्रकार के वाद्य यन्त्रों द्वारा ऊँच्चध्वनि की जाती है। इसी से इसका नाम देवध्वनि है। यह उत्सव अति प्राचीन काल से चला आरहा है। इस उत्सव के उपलक्ष में पंचरत्न मन्दिर के भीतर 'मारेई पूजा' अर्थात नागमाता मनसादेवी का घट एवं नाग फण स्थापन कर भादो की १ली या दूसरी तारीख को पूजा होती है।

इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राचीन कवि दुर्गावर और मनकर हस्तलिखित पद्मपुराण (बेहुला लखिन्दर की कहानी) इस अवसर पर प्राचीन सुर से गाई जाती है। इस उपलक्ष में जो नृत्य करते हैं उन्हें 'देउधा' कहते हैं। विशेष उल्लेख योग्य यह है कि चाहे जो 'देउधा' नहीं हो सकते। जो 'देउधा' होते हैं वह देव देवियों का नानारूप, विभीषिकायें एवं कुमारी रूपा देवी को स्वप्न में एक मास पूर्व से ही देखते हैं। जो देव देवी जिसके शरीर में दैविक शक्ति प्रदान करती है वह उसी देव देवी का 'देउधा' होता है। उस समय से वे लोग निरामिष भोजी हो भक्ति भाव एवम् संयम् से अपने अपने देव देवी के मन्दिर के निकटस्थ घर में वास करते हैं। दैविक शक्ति के बल से वे लोग भैरव वेष में सज्जित हो लगातार दो दिनों तक भावावेष में नृत्य करते रहते हैं। इस समय अनेक अद्भुत बातें

देखने में आती हैं। इस नृत्य के समय कोई तीक्ष्णधारवाले खड्ग पर नृत्य करते हैं परन्तु उन्हे तनिक भी क्षति नहीं होती। इस अवस्था में भावाविष्ट होकर वे लोग जो भविष्यवाणी करते है वह भी फलित होती देखी जाती है। दोनों ही रात्रि में नृत्य होता ही रहता है। पूजा के दूसरे दिन नृत्यादि के उपरान्त शेष रात्रि में सौभाग्य कुण्ड में घट विसर्जन होता है और उत्सव का अवसान हो जाता है।

दुर्गापूजा, दोलयात्रा, वासंतीपूजा—देवी मन्दिर में शरत काल में शारदीया दुर्गोत्सव, बसन्तकाल में कामेश्वर कामेश्वरी देवी की दोल यात्रा एवं नवरात्र या वासन्ती पूजा भी होती है। इन उत्सवों में खासकर अम्बूवाची एवं (शारदीया) नवरात्र दुर्गोत्सव के अवसर पर दूर दूर के स्थानों से अनेक यात्रियों का आगमन होता है। देवध्वनि एवं पुष्याभिषेक उत्सव के अवसर पर निकटवर्त्ती स्थानों से अनेक यात्रीगण आते हैं। ग्रहणादि व अन्यान्य उत्सवों के उपलक्ष में भी यात्रियों का विशेष आगमन होता है।

कामाख्या देवी का मन्दिर संश्लिष्ट कामरूप के अन्यान्य मन्दिरों का विवरण

कामरूप तथा कामाख्या के चारों ओर अनेक तीर्थ स्थान हैं। कामाख्या देवी के मन्दिर से पाँच कोश के भीतर अवस्थित जितने तीर्थस्थान हैं वे सभी कामाख्या महापीठ के ही अङ्गीभूत तीर्थ के नाम से पुराणों में वर्णित हैं। यथा—

> अमोधिं मणिपर्य्यन्तमाचित्राद् गन्धमादनम् ।
> पंचक्रोशमितं देवी कामाख्या योनिमण्डलं ॥
> पंचक्रोशमितं देवि सर्व्वेषामेव दुर्लभम् ।

(योगिनी तन्त्र । देवीश्वर सम्वाद। एकादश पटल २६।)

(१३८८ शक की प्राचीन हस्तलिखित योगिनी तन्त्र से उद्धृत।)

अमोनि से मणि पर्य्यन्त, अर्थात हाजो के मणिकूट पर्वत के हयग्रीव माधव से उत्तर गौहाटी के मणिकर्णेश्वर पर्य्यन्त तथा चित्राचल वा नवग्रह से गन्ध मादन तक (अभी भी अनाविष्कृत) इन चार सीमाओं के बीच के पंच क्रोश परिमित स्थान कामाख्या योनि मण्डल के अन्तर्गत हैं एवं यह सर्वों के लिये दुर्लभ है, ऐसा पुराणों में लिखा है। इस पंच क्रोश के भीतर उमानन्द, अश्वक्रान्त मणिकर्णेश्वर, नवग्रह, उग्रतारा,

वशिष्ठाश्रम, पाण्डुनाथ और हयग्रीव माधव आदि तीर्थों का परिचय निम्न है।

उमानन्द

उमानन्द भैरव का मन्दिर कामाख्या पर्वत के पूर्व ब्रह्मपुत्र नदी के मध्यस्थ एक शैलद्वीप है। वह गौहाटी के निकट ही अवस्थित है। यह पर्वत योगिनी तन्त्र एवं कालिका पुराण में भस्मकूट, भस्मशैल नाम से वर्णित है।

किम्वदन्ती है, महादेव ने अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव को यहीं भस्म किया था। इसी से इसका यह नाम
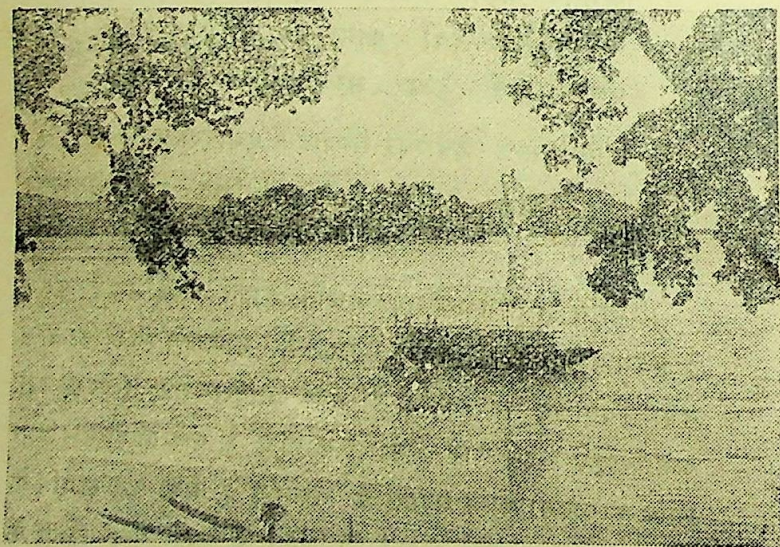
(वर्षाकाल में ब्रह्मपुत्र के मध्य भाग में उमानन्द)

पड़ा है किन्तु उमा के प्रेमवश वह यहाँ अवस्थित है। अतः इसका नाम उमानाथ या उमानन्द है। इस स्थान का दृश्य अति मनोहर है। इसी पर्वत पर उमानन्द शिव का मन्दिर है। इस मन्दिर के बीच अनादि शिवलिङ्ग और एक रूपा का बनाया हुआ वृषभवाहन है। पंचवक्त्र दशभुज उमानन्द की चलन्ता मूर्ति भी विद्यमान है।
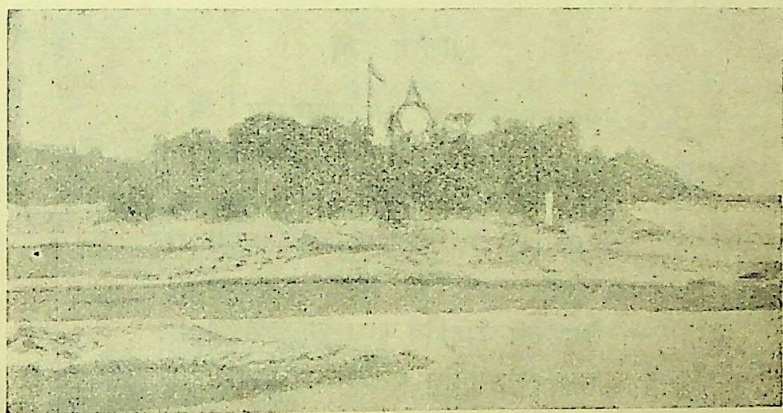
(शीतकाल में ब्रह्मपुत्र के मध्य भाग में उमानन्द)

यात्रीगण उमानन्द शिव का दर्शन कर परम शान्ति लाभ करते हैं। शिवरात्रि में यहाँ पूजा उत्सव एवं मेला इत्यादि लगता है। उमानन्द के दर्शन के लिये नौका द्वारा जाना पड़ता है। वर्षाकाल में ब्रह्मपुत्र का जल बढ़जाने के कारण वहां दर्शनार्थ जाना विपदा जनक है।

उमानन्द कामाख्या देवी के भैरव हैं। इसी हेतु शास्त्रों के मतानुसार यात्रियों के लिये पहले उमानन्द भैरव का दर्शन पूजादि कर एवं पाण्डुघाटस्थ पंच-पाण्डव का दर्शन कर नीलाचल पर आरोहण करने की विधि है। उमानन्द के दर्शन पूजादि के उपरान्त नीलाचल पर तीन रात्रि वास कर कामाख्या देवी का दर्शन पूजादि करने का नियम है।

प्रणाम-मन्त्र

धर्मकामार्थमोक्षाय सर्व्वपापहराय च।
नमस्त्रिशूलहस्ताय उमानन्दाय वै नमः॥
प्रसीद पार्व्वतीनाथ उमानन्द नमोऽस्तुते॥

दर्शन-मन्त्र

देव देव महादेव शशाङ्काङ्कितशेखर।
तव दर्शनमात्रेण पुनर्ज्जन्म न विद्यते॥

उमानन्द मन्दिर में दो आहोम राजाओं की शिलालिपि की प्रतिलिपि एवं रूपा निर्मित वृषभ वाहन चलन्ता मूर्ति के सिंहासन के गात्र पर उत्कीर्ण लिपि की प्रतिलिपि ७) (८) परिशिष्ट में द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त भी ब्रह्मोत्तर दान के दो ताम्र पत्र हैं।

उर्व्वशीकुण्ड

उमानन्द वा भस्म कूट पर्वत के दक्षिण ब्रह्मपुत्र नदी के बीच उर्व्वशी कुण्ड अवस्थित है। उर्व्वशी कुण्ड में यथा विधि

स्नान, उमानन्द भैरव का दर्शन, पाण्डु शिला का स्पर्श और शैलकूट पर आरोहण करने से मनुष्य का दूसरा जन्म नहीं होता। यथा—

> उर्व्वश्यां विधिवत् स्नात्वा स्पृष्टा पाण्डूशिलां तथा।
> नीलकूटं समारूह्यो पूनर्योनौ न जायते॥
> (कालिका पुराण। एकोनशीतितम अध्याय। ८३)

अश्वक्रान्त

अश्वक्रान्त वा अश्वक्लान्त ब्रह्मपुत्र के दूसरे पार उत्तर गौहाटी नामक स्थान में अवस्थित है। इस स्थान पर दो मन्दिर हैं। एक ब्रह्मपुत्र के किनारे एक छोटे पहाड़ के निम्न भाग में है, जिसमें कर्मरूपी भगवान विष्णु की मूर्ति है। यथा—

> जनार्दन गिरो विष्णुः स्वयम् कूर्मस्वरूपधृक्।
> शिलां भित्वा स्थितस्तत्र देवगन्धर्व्वसेवितः॥

यह श्लोक 'कामाख्या महात्म्य' नामक पुस्तक में योगिनी तन्त्र से उद्धृत है।

पर्वत के उपरी भाग पर अनन्त शय्या पर सोये हुए नारायण का दूसरा मन्दिर अवस्थित है इस मन्दिर के गात्र में भगवान के दशावतार की प्रतिमूर्ति विद्यमान है। ब्रह्मपुत्र नदी के तीर पर यह स्थान पर्वत के उपर अतिरम्य है। इस स्थान में अश्वक्रान्त नामक एक कुण्ड भी था। योगिनी तन्त्र

के अनुसार भगवान जनार्दन के नागलोक से आकर इस कुंड में स्नान करने के कारण यह तीर्थ अश्वक्रान्त के नाम से विख्यात है। यथा—

नागलोकादुत्थितश्च कल्किरूपी जनार्दनः।
स्नात्वा तत्रैव विवरे अश्वतीर्थं चकारह॥
(योगिनी तन्त्र। द्वितीय भाग। तृतीय पटल ३०)
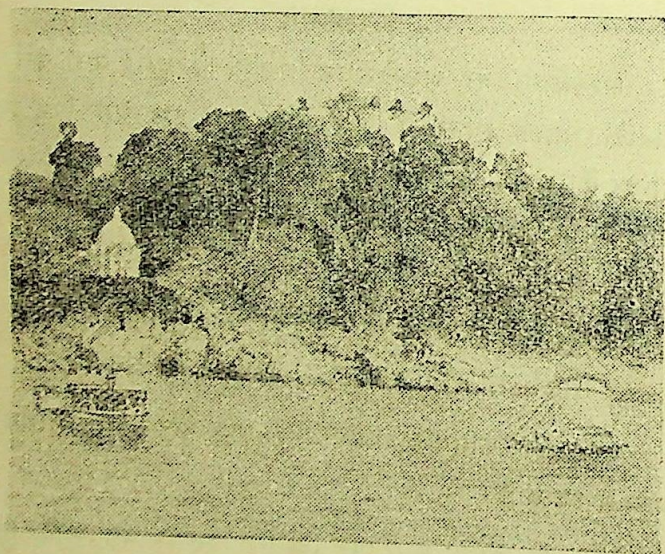
अश्वक्रान्त

वर्तमान काल में यह कुण्ड ब्रह्मपुत्र नदी में विलीन होगया है। अत: यात्रीगण ब्रह्मपुत्र में स्नान करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ ब्रह्मपुत्र नदी के तीर पर भगवान विष्णु का पादपद्म चिन्ह अवस्थित है। यह स्थान विष्णु पद के नाम से विख्यात है।

तथा शास्त्रों में अश्व-गया नाम से प्रसिद्ध है। इस विष्णु पाद पद्म के निकट पिण्डदान करना पितृलोगों के उद्धार के लिये प्रशस्त है। यथा—

नृत्यन्ति पितरस्तेषां तुष्टाश्चैव पितामहाः ।
लभन्ते तर्पणात्तृप्तिं पितुर्द्दानात् त्रिपिष्टपं ॥

(योगिनी तन्त्र। द्वितीय भाग। तृतीय पटल। ४७)

यहाँ पिण्डदान करने से पितृ पितामहगण तुष्ट हो हर्ष नृत्य करते हैं तथा तर्पण एवं दान करने से पितृगण परितुष्ट हो स्वर्गगामी होते हैं।

चैत मास की अशोकाष्टमी तिथि में यहाँ बहुत यात्री आते हैं। शास्त्र में लिखा है कि कार्तिक मास पद्मयोग में इस स्थान में स्नान करने से महत्लोकों की प्राप्ति होती है। यह योग अति दुर्लभ है।

यह भी कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के अश्वों ने क्लान्त हो यहीं जल पीया था। अतः इसका नाम अश्वक्रान्त भी है। स्टीमर या नौका से यहाँ आने जाने की सुविधा है। यहां से कुछ दूरी पर पूर्व की ओर मणिकर्णेश्वर शिव का मन्दिर है।

प्रणाम-मंत्र

केशवः क्लेशनाशाय दुःखनाशाय माधवः ।
श्रीहरिः पापनाशाय मोक्षदाता जनार्दनः ॥
जनार्दनाय देवाय मोक्षैकफलदाय च ।

मन्दराचलसंस्थाय नमस्ते नाभिमूर्त्तये ॥
जन्मकोटिसहस्त्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
जनार्दनस्पर्शमाच्च पुनर्जन्म न विद्यते ॥
जनार्दनंच देवेशं कलौ बुद्धस्वरूपिणम् ।
तंदृष्ट्वा मुच्यते पापैर्महाघोरे कलौयुगे ॥

(आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (६) परिशिष्ट में द्रष्टव्य है ।) इसके अतिरिक्त आहोम राजा शिवसिंह प्रदत्त ब्रह्मोत्तर भूमिदान का १६६१ शक (१७३९ ई०) १० पौष का ताम्रपत्र भी है ।

मणिकर्णेश्वर

उमानन्द शैल वा भष्मकूट के निकट ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तर के पार में उत्तर गौहाटी के निकट मणिशैल पर्वत के ऊपर मणिकर्णेश्वर नामक शिवलिङ्ग अवस्थित है। इस पर्वत के नीचे ब्रह्मपुत्र नदी प्रवाहित हो रही है। अतः इसका सौन्दर्य एवं दृश्य अति मनमोहक हैं। इस स्थान में मणिकर्ण नाम का एक सरोवर है। किन्तु वह ब्रह्मपुत्र नदी में बीलीन होगया है। (आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (१०) परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

वशिष्ठाश्रम

कामाख्या पहाड़ से १० मील एवं गौहाटी से सात मील की दूरी पर वशिष्ठ मुनि का आश्रम अवस्थित है। यह स्थान चारों ओर से पर्वत मालाओं से परिवेष्टित, परिशोभित एवं

निर्जन है। इस स्थान में उच्च पहाड़ों के बीच से होती हुई वशिष्ठ गंगा नामक प्रपात बड़े वेग से निर्झरित हो रहा है। यह पवित्र गंगादेवी की धारा पर्वत कानन को भेद कर मानो असार संसार में दग्ध मानवों को शान्ति की त्रिधारा में स्नान कराने के लिये कल कल ध्वनि से अवतरित हो तेजस्वी वशिष्ठ देव का गुण-गान करती है। यथ—

> निमिनाम्नास्तुराजेर्षः शापाद्ब्रह्मसुतः पुरा।
> वशिष्ठो ह्यशरीरोऽभूत्तच्छापाच्च निमिस्तथा॥
> ततो ब्रह्मापदेशेन निर्जने कामरूपके।
> सन्ध्याचले तपस्तेपे तस्य विष्णुरभूत्तदा।
> (कालिकापुराण। एकोनाशीतितमोऽध्याय। १६८)

ब्रह्मा के मानस पुत्र वशिष्ठ देव निमीराजा के शाप वश देह हीन हुये। राजर्षि निमी भी वशिष्ठ शाप से देह हीन हुऐ। तब वशिष्ठ देव निरूपाय हो ब्रह्मा के शरणागत हुए। ब्रह्मा के उपदेशानुकूल वह इस निर्जन सन्ध्याचल में आकर भगवान विष्णु का तपस्या करने लगे। विष्णु ने दर्शन दे वर प्रदान किया। महर्षि के तप के प्रभाव से सन्ध्या, ललिता, और कान्ता नामक तीन धाराओं में प्रवाहित हो गङ्गा यहाँ आयी है। इन त्रिधाराओं का संगम स्थान वशिष्ठ गङ्गा के नाम से विदित है। इसी सलिल में स्नान कर एवं यहां का जल पीकर वशिष्ठ देव अपने पूर्व देह को प्राप्त हुए। वशिष्ठ देव प्रतिदिन इसी त्रिधारा-संगम गंगाजल में त्रिसन्ध्या करते थे। यात्रीगण इस

स्थान में स्नान, सन्ध्या, तर्पणादि कर परम शान्ति को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य इस त्रिधारा संगम स्थान में त्रिसन्ध्या करते हैं वह संध्या पतित पाप ताप से मुक्त हो जाते हैं।

(वशिष्ठ गङ्गा)

यहां वशिष्ठ देव का मन्दिर है। सूर्य्य एवं चन्द्र ग्रहणों में यहां असंख्य यात्रियों का समागम होता है।

स्नान–मन्त्र

सन्ध्याचलसमुद्भूते वशिष्ठेनावतारिते ।
कुरुक्षेत्रे मम स्नानं गङ्गागर्भे नमोऽस्तुते ॥

प्रणाम–मंत्र

नमस्ते तीर्थराजेन्द्रे नमस्ते लोकपालिके ।
नमस्ते गिरिसम्भूते तीर्थेश्वरी नमोऽस्तुते ॥

(आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (११ परिशिष्ट में द्रष्टव्य है ।)

अरुन्धती

वशिष्ठ आश्रम से कुछ दूर पश्चिम की ओर वशिष्ठ मुनि की पत्नी अरुन्धती देवी का शिला चिन्ह अभी भी है। यह स्थान निविड़ वनाकीर्ण एवं विपद संकुलन है।

नवग्रह

गौहाटी को उजान बाजार की पूर्व सोमापर प्राचीन चित्राचल नामक पर्वत के उपर नवग्रह का मन्दिर है, वर्तमान काल में इस पर्वत को 'नवग्रह पर्वत' कहते हैं। इस मन्दिर में नवग्रहों की नवशिला मूर्तियां विद्यमान हैं। यात्रियों को यहां आकर नवग्रह पूजा करने से ग्रह शान्ति एवं अभिष्ट लाभ होता है। एक समय यह स्थान ज्योतिष चर्चा का केन्द्र था। कहा जाता है कि इस पर्वत के उपर महर्षि कर्ण का आश्रम था। (आहोम राजा की शिलालिपि की प्रतिलिपि (१२) परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।

उग्रतारा

उग्रतारा गौहाटी के उजान बजार में जोरपुखरी के निकट अवस्थित है। मंदिर के बीच देवी उग्रतारा की पुण्य वारिपूर्ण नाभि मंडलरूप पीठ स्थान अवस्थित है। यह स्थान कामाख्या देवी के नाभि मण्डल के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान देवी परमेश्वरी उग्रतारा नाम से प्रसिद्ध हो अवस्थित है।

यह "पुखुरी" आहोम राजा शिवसिंह की १६६० शाक (१७३८ ई०) में बनवायी हुई है। यहाँ इस सम्बन्ध में एक शिलालिपी भी वर्तमान है।

चत्राकार

चत्राकार मन्दिर उजान बाजार के सन्निकट ब्रह्मपुत्र नदी के तीर पर एक छोटे पर्वत के ऊपर अवस्थित है। वहाँ जाकर यात्रिगण यथाविधि पूजा और दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

शुक्रेश्वर

शुक्रेश्वर मन्दिर गौहाटी के मध्य खण्ड पानबजार नामक स्थान में ब्रह्मपुत्र नद के तीर पर एक चोटी पहाड़ी के ऊपर अवस्थित है। मुनिवर-शुक्राचार्य्य ने यहां शिवलिङ्ग की स्थापना की थी। अतः इस शिव का नाम शुक्रेश्वर या शुक्लेश्वर है। मनुष्य इस शुक्रेश्वर का दर्शन कर माया बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। इस शुक्रेश्वर देवालय में एक संस्कृत पाठशाला है। मंदिर में नित्य सेवा पूजादि के लिये आहोम राजा राजेश्वरसिंह

प्रदत्त १६८३ शक (१७३१ ई०) ४ कार्तिक के ब्रह्मोत्तर भूमि का ताम्र पत्र वर्तमान है।

जनार्दन

शुक्रेश्वर के निम्न भाग में जनार्दन का मन्दिर है। इस मंदिर में भगवान विष्णु की प्रतिमूर्ति अवस्थित है।

बाणेश्वर

जनार्दन मंदिर के सन्निकट बाणेश्वर शिव का मंदिर है। इस मंदिर में बाणेश्वर नामक शिव अवस्थित है।

पाण्डुनाथ

कामाख्या पर्वत के पश्चिम प्रान्त में भगवान विष्णु का वराह पर्वत अवस्थित है। इस वराह पर्वत के निम्न भाग में तीर्थ राज ब्रह्मपुत्र नद के तीर पर पाण्डुनाथ नाम के भगवान विष्णु अवस्थित है। यहां भगवान् विष्णु की. जांघ का चिन्ह शिलारूप में विद्यमान है। यथा—

वराहः पाण्डुनाथाख्यः स्थितस्तत्र हरिर्यतः।
जघने शिरसी कृत्वा जघान मधुकैटभौ॥

(कालिका पुराण। द्विषष्टितम् अध्याय। १०३)

भगवान हरि ने अपनी जांघ के ऊपर रखकर मधु ओर कैटभ नामक दो असुरों का वध किया था। वही ऊरु चिन्ह शिलारूप में पाण्डुनाथ नाम से यहां अवस्थित है। इसके अतिरिक्त इस स्थान में पंचपाण्डवों की र्ति है। ऐसा कहामू

जाता है कि पाण्डवों के अज्ञात वास की अवधि पूरी होने पर उन लोगों ने राज्य प्राप्ति की कामना से इस स्थान में आकर ब्रह्मपुत्र नद में स्नानादि सम्पन्न कर कामाख्या देवी के निकट राज्य प्राप्ति की कामना की थी। देवी महामाया ने संतुष्ट हो उनलोगों को राज्य लाभ का वर प्रदान किया था। इसी पाण्डुनाथ के सन्निकट उत्तर पूर्व रेलवे (एन० एफ० आर०) का "पाण्डु" स्टेशन है। इसी से यहां दूर देशों से यात्रियों का समागम होता है। वर्तमान काल में रेलवे के विभागादि के कारण अनेक नये कार्य्यालयादि यहाँ बने हैं जिसके कारण इस स्थान की आवादी उत्तरोत्तर बढ़ रही है, एवं यह स्थान प्रधानता को प्राप्त हुआ है। यहाँ से स्टीमर द्वारा ब्रह्मपुत्र नद पार करके अमीनगांव स्टेशन जाना पड़ता है।

प्रणाम-मन्त्र

पाण्डुनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारक ।
त्राहि मां सर्व्वलोकेश विष्णुरूप नमोऽस्तुते ॥

अनुज्ञा-मन्त्र

नमस्ते पाण्डवे तुभ्यं महाभैरवरूपिणे ।
अनुज्ञां देही मे नाथ कामाख्यादर्शनं प्रति ॥

कोचराजा की कीर्तिज्ञापक शिलालिपि की प्रतिलिपि (१३) परिशिष्ट में द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त १७०७ शाक (१७८५ ई०) वैसाख मास आहोम राजा गोरीनाथसिंह प्रदत्त पाण्डुनाथ

मन्दिर, जनार्दन मन्दिर के व्यय विधान सम्बन्ध दोनों ओर लिपिबद्ध ताम्रपत्र अभी भी वहां है।

हयग्रीव माधव

वर्तमान गौहाटी के उसपार "उत्तर पश्चिम की ओर" मणिकूट पर्वत के ऊपर 'हाजोग्राम' में 'हयग्रीव माधव' का मन्दिर है। उत्तर-गौहाटी से १५ मील की दूरी पर और असीनगांव स्टेशन से १२ मील पश्चिम में यह मन्दिर स्थित है। यहां मोटर बस इत्यादि आते जाते हैं। हयग्रीव माधव से दक्षिण पूर्व की कुछ दूरी पर मदना चल पर्वत के ऊपर एक शिव मंदिर है। वहां के शिव 'केदार' नाम से प्रसिद्ध हैं। शिवरात्रि में
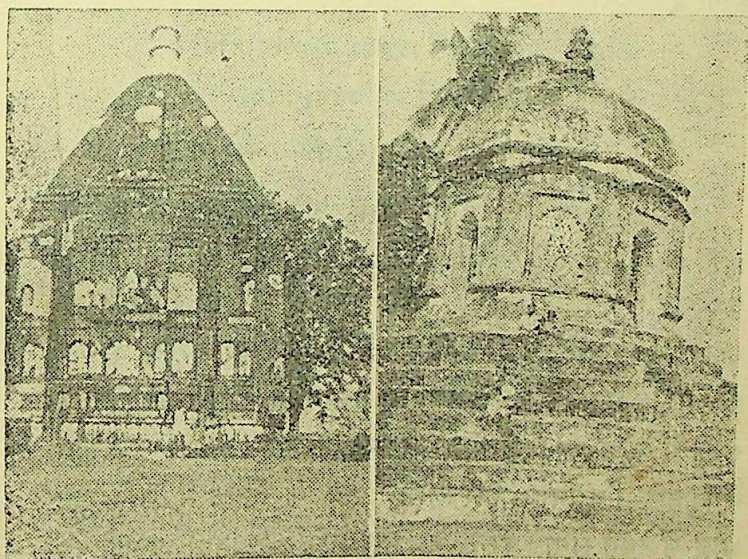
(हाजो में हयग्रीव माधव का मन्दिर और दौल)

यहां विशेष उत्सव आदि होते हैं। उसके निकट ही 'कमलेश्वर' नामक शिव, जयदुर्गा मन्दिर एवं एक पोखरी है। इसके अतिरिक्त 'केदार' जाने के मार्ग में गणेश का मन्दिर और उक्त कामेश्वर पर्वत के निम्न भाग में 'अपूनर्भव' कुण्ड है। इस पर्वत के ऊपर गोकर्ण और विकर्ण नामक दो योगी रहते थे। शिवचतुर्दशी के उपलक्ष में केदार-मन्दिर में बहुत यात्री आते हैं।

'अपूनर्भव कुण्ड के जल में स्नान कर गोकर्ण आदि योगीद्वय तथा केदार, कमल एवं माधव का दर्शन करने से मुक्ति होती है। यथा—

स्नात्वा पूनर्भवजले दृष्ट्वा गोकर्णयोगिनौ।
केदार-कमलौ दृष्टवा मुक्तिर्माधवदर्शने ॥

(कालिकापुराण। अष्टसप्ततितम अध्याय। ६१)

कालिकापुराण में लिखा है—इसी मणिकूट पर्वत पर और्व्य ऋषि तपस्या के लिये आश्रम बनाकर तपस्या में रत हुऐ थे। किन्तु ज्वरासुर, हयासुर आदि पाँच असुरों के नाना प्रकार के अत्याचारों से पीड़ित हो ऋषिवर भगवान विष्णु की शरणापन्न हो आराधना करने लगे। भगवान प्रसन्न हो असुरों का विनाश करने में प्रवृत्त हुए। हयासुर तो भय के मारे भागकर ब्रह्मपुत्र के किनारे विद्यमान विश्वनाथ शिव के निकट में अति गुप्त भाव से रहने लगा। परन्तु भगवान ने ढूँढ़कर वहीं उसका बध किया। पीछे ज्वरादि चारों असुरों का भी वध उन्होंने मणिकूट

पर्वत के ऊपर ही किया। उन्होंने मुनिवर को सिद्ध बना निरापद भी कर दिया। भगवान विष्णु मणिकूट पर्वत के ऊपर देवता तथा असुरों के हित के लिये एवं अपनी लीला प्रकट रखने के लिये 'हयग्रीव माधव' के नाम से विख्यात है। :—

स हयग्रीवरूपेण विष्णुर्हत्वा ज्वरासुरम्।
निहत्य स हयग्रीवः क्रीड़ायै यत्र स स्थितः॥
हत्वा ज्वरं तथा विष्णुस्तत्र वासमथाकरोत्।
नरदेवासुरादीनां यथा भवति वै हितम्॥

[कालिकापुराण। अष्टसप्ततितम् अध्याय ७८-७९]

योगिनी तन्त्र के अनुसार इस तीर्थ की उत्पत्ति का विवरण इस प्रकार है--श्रीक्षेत्र के श्रीजगन्नाथ देव की मूर्ति जिस उपादन से बनी हुई थी उसी से माधव की मूर्ति भी बनी। किसी समय उड़ीसा के राजा इन्द्रद्युम्न ने तीर्थ स्थानों और देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा के लिये एक महान यज्ञ प्रारम्भ किया। पीछे यथाविधि यज्ञ सम्पन्न होने के बाद राजा जब रात में सोये तो भगवान वासुदेव सन्तुष्ट हो राजा को स्वप्न में दर्शन दे कहने लगे—"हे राजन्। खूब सवेरे अकेले अपने हाथ में परशु लेकर सागर तट पर गमन करो। उसी स्थान पर जाति वर्जित (नाम हीन) एक महान एवं अद्भुत वृक्ष देखोगे। तुम इसी वृक्ष को अपने परशु द्वारा काट कर सात भागों में विभक्त करना। मूल खण्ड द्वारा भगवान की मूर्ति बना विधिवत् यथा स्थान स्थापन करना। वह स्थान महातीर्थ रूप से पूजित

होवेगा। देवादिदेव वासुदेव राजा को स्वप्न में ऐसा कह अन्तर्ध्यान हो गये। इसके उपरान्त राजा की नींद टूटी और वे स्वप्न का विषय चिन्तन करने लगे और अति ही विस्मत हुए और उन्होंने किसी तरह रात व्यतीत की। प्रातः काल उठ-कर राजा ने वैसा ही किया। सर्वप्रथम उड़ीसा में ही राजा ने उस वृक्ष मूल से भगवान की मूर्ति बना स्थापित की। यही वर्तमानकाल में श्रीक्षेत्र या जगन्नाथ क्षेत्र के नाम से विख्यात है। उस जगह श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा की प्रतिमूर्ति विद्यमान है। राम उसके कबन्धाकार उर्द्ध खण्ड द्वारा भगवान की मूर्ति काश्मीर में स्थापित की गई। यह मूर्ति आदित्य के नाम से भी अभिहित है। उसके उर्द्ध भाग से गुरु शुक्र शोणादित्य के नाम से शिलामूर्ति की तरह भगवान की मूर्ति स्थापित की। वरुण देव ने इस वृक्ष के दो भाग से कामरूप में और एक भाग से मलयागिरि पर मूर्ति स्थापना की। उनके उर्द्ध भाग से मणिकूट पर्वत पर जो मूर्ति स्थापित हुई वह 'हयग्रीव माधव' के नाम से विख्यात हुई। अवशिष्ट भाग द्वारा कुवेर देव ने पूर्व देश में ईशान कोण (वर्तमान उत्तर लक्षीमपुर) में नन्दीश नामक भगवान की मूर्ति स्थापित की। यह मतस्याक्ष माधव के नाम से प्रसिद्ध है। इस तरह इस नाम हीन वृक्ष के सात खण्डों द्वारा भगवान के सात मूर्ति परिग्रह विभिन्न स्थानों में विराजित है। यथा —

परशुना शातयामास निशांतनतयैव हि ।
सप्तधा द्रुमराजन्तं निपपात महीतले ॥
ऊर्द्धदेशे मूलभागे कल्पयामास वै विभूः ।
तदूर्द्ध खण्डं काश्मारे कत्रन्धकारमेव च ॥
आदित्यं तं विजानीयाद्ब्रामेण स्थापितं पूराः ।
शिलारूपं महेशाणि स्थापितं गुरुणा ततः ॥
भागद्वयं कामरूपे भागैकं मलयगिरौ ।
मणिकूटे ततोर्द्धश्च स्थापितं वरुणेन हि ॥
प्राच्यां नन्दीशमैशान्य मतूस्याक्षोनाम माधवः ।
शिलामयी दारुमयः कुवेरेणैव स्थापितः ॥
महावराहनाम्ना च योऽष्टादशभूजैर्युतः ।
हयाख्यो मणिकूटे च माधवाख्यो व्यवस्थितः ॥
[योगिनीतन्त्र । द्वितीय भाग । नवम पटल । १३६-१४५]

हयग्रीव माधव का मन्दिर एक सुन्दर छोटी पहाड़ी के ऊपर अवस्थित है। यह पर्वत दीर्घप्रस्थ एवं सो हाथ में फैला है। इस मन्दिर में पर्वत के उत्तर तरफ अवस्थित बहुत बड़ी पोखरी से संलग्न सोपान पथ से ऊपर जाया जाता है। यह सीढ़ि इतनी अच्छी रीति से बनी है कि देखने मात्र से ही मन प्रसन्न हो जाता है। इस मार्ग से जाकर मन्दिर का प्रथम तोरण द्वार अतिक्रम करने पर मन्दिर द्वार के सम्मुख नरसिंह भगवान की मूर्ति का दर्शन कर पीछे मन्दिर में प्रवेश करना पड़ता है।

माधव मन्दिर के भीतर हयग्रीव माधव के निकट उत्तर की ओर द्वितीय माधव: गरूड़ और दक्षिण की ओर गोविन्द और वासुदेव की मूर्ति है। मन्दिर के गात्र में खोदाई की हुई दशावतार और अन्यान्य विग्रहों की भी मूर्ति है।

कालापहाड़ कामाख्या मन्दिर विध्वंस करने के बाद हयग्रीव माधव और केदार मन्दिर तक आया था। १५०५ शक (१५८३ ई०) में कोचवंश के राजा रघुदेव ने हयग्रीव माधव के विध्वंस्त स्थानों का पुन: संस्कार किया। उन्होंने भगवान के भोग पूजादि के सम्बन्ध में बहुत भूमि भी दान की। द्वितीय माधव की मूर्ति कोच राजाओं द्वारा वहीं प्रतिष्ठित की गयी है।

हयग्रीव माधव के मन्दिर के प्राचीर के भीतर १६७२ शक (१७५० ई०) में आहोम राजा प्रमत्तसिंह स्थापित एक दौल मन्दिर अवस्थित है।

प्रणाम–मन्त्र

हतासूर हयग्रीव मुरारे मधुसूदन।
मणिकूटकृतावास हतासूर नमोऽस्तुते॥

दर्शन-मन्त्र

जन्मकोटि सहस्त्राणी कल्पकोटिशतानि च।
हयस्य दर्शनादेव न यास्ये भास्करि क्षयम्॥

हयग्रीव माधव की पूजा अर्चनादि के लिये आहोम राजा रुद्र-सिंह प्रदत्त १६३३ शक (१७११ ई०) के चैत मास की दी गयी चांदी की सामग्रियां अभी भी कुछ कुछ है। चांदी के कलश के ऊपर खोदित उनका नाम और तारीख आज भी इसके साक्षी हैं।

हयग्रीव माधव के मन्दिर में कोच राजा और दौल में आहोम राजा आदि की कीर्ति ज्ञापक शिलालिपि की प्रतिलिपि (१४) (१५) परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।

इसी जगह मन्दिर में आहोम राजाओं के कीर्ति चिन्ह है। [शिलालिपि की प्रतिलिपि परिशिष्ट (१६) में द्रष्टव्य है।]

इसके अतिरिक्त भी आहोम राजा स्वर्गनारायण और कमलेश्वरसिंह इत्यादि ने करीब १७ वीं सदी में (१७२२ शक) इस जगह पर ब्राह्मणो को ब्रह्मोत्तर भूमि दान की थी। उस समय के ताम्रपत्र अभी भी देखने में आते हैं। आसाम में जितनी भूमि हयग्रीव माधव के निमित्त दान हुई है, उतनी और किसी देव देवालय के निमित्त नहीं दी गई है।

[परिशिष्ट में ताम्रलिपि की प्रतिलिपि १७ में द्रष्टव्य है।]

ब्रह्मपुत्र का उत्पत्ति विवरण एवं माहात्म्य

पुराणों में लिखा है—"शान्तनु मुनि की स्त्री अमोघा के गर्भ द्वारा ब्रह्मा के संयोग से एक जलमय पुत्र की उत्पत्ति हुई। लोक मंगलकर शान्तनु ने इस प्रकार उत्पन्न हुए, ब्रह्मपुत्र को चार पर्वतों के बीच में स्थापित किया, इसीसे ब्रह्मकुण्ड की उत्पति हुई है। पर्वतों के बीच में ब्रह्मपुत्र जलराशि रूप में वृद्धि पाने लगा।

जमदग्नि पुत्र परशुराम ने पिता की आज्ञानुसार अपनी माता रेणुका का वध किया। मातृहत्या पाप मोक्षण के लिए पिता के उपदेश से ब्रह्मपुत्र नामक महाकुण्ड में स्नान व पान करके पाप मुक्त हुए। परशुराम ने ब्रह्मपुत्र का प्रत्यक्ष महत्व जानकर विश्व कल्याण के लिए पर्वत समूह को भेदकर ब्रह्मपुत्र नद को पूर्व की ओर से कामरूप के मध्य से प्रवाहित किया।

तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्याः प्रतापवान ।
चक्रे मातृवधं घोरमयुक्तं पितुराज्ञया ॥
तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः ।
स जगाम् महाकुण्डं ब्रह्माख्यं स्नातुमिच्छाया ॥
तत्र स्नात्वा च पित्वा च मातृहत्यामपानयत् ।
बीथीं परशुना कृत्वा तं ब्रह्मामवतारयत् ॥

[कालिकापुराण द्वशीतितयोऽध्याय ४१-४३]

ब्रह्मा का ओरस पुत्र होने के कारण इसका नाम ब्रह्मपुत्र हुआ। स्वयं ब्रह्मा ने इसका नाम लौहित रखा। लौहित सरोवर से निकास होने के कारण इसका दूसरा नाम लौहित्य है।

जो व्यक्ति संयमित होकर चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की अष्ठमी को लौहित्य जल में स्नान करते हैं वे ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं। सम्पूर्ण चैत्र मास में पवित्र जल से इसमें स्नान करने से कैवल्य पद प्राप्त होता है।

चैत्रें मासि सिताष्ठम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः।
चैत्रन्तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः॥
स्नाति लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम्।
लौहित्यतोये यः स्नाति स कैवल्यमवाप्नुयात्॥
[कलिका पुराण—अशीतित्तमोऽध्याय। ३३-३६]

* "यदि चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की अष्ठमी को पुनर्वसु नक्षेत्र एवम् बुधवार हो तो उस योग में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

दर्शन-मन्त्र

त्वं ब्रह्मपुत्र भगवन् भवतीर्थराज
गम्भोरनोर परिपूरितसर्वदेहः।

---

* "पुनर्वसु – बुधोपेता चैत्रमासि सिताष्ठमीम्।
स्त्रोतः सु विधिवत् स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत॥"

तद्दर्शनाद्धरतु मे भवघोर दुःखं
संगोगतः कलियुगस्य नमो नमस्ते ।।

नमस्कार-मन्त्र

नमः शान्तनु पुत्राय अमोघानन्दनाय च ।
नमस्ते सर्वसंहर्त्रे कर्त्रेशुद्धाय वै नमः ।।

स्पर्शन-मंत्र

ब्रह्मपुत्र महावाहो शान्तनोः कुलनन्दन ।
अमोघा गर्भसंम्भूत पापं लौहित्य मे हर ।।

आवाहन मंत्र

ब्रह्मपुत्र नदश्रेष्ठ जामदग्न्यावतारित ।
पर्शु नादत्त मार्गेण आगच्छ वरदो भव ।।

र ङ्कल्प

विष्णुरित्यादि अमुकऋषिगोत्रस्य श्री अमुक देव शर्मणो मम पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त अशोतकाष्टभ्यातिथौ आजन्मार्ज्जिजश सर्वपापक्षय पूर्बापर सप्तपुरुषोद्धार पूर्वक श्रृतिस्मृति पुराणाद्युक्त पृथिव्याधिकरणक समस्ततीर्थ सयान जन्य फलसम समग्रफल ब्रह्मपद प्राप्ति कामख्या अस्मिन लोहित्याक्ष ब्रह्मपुत्रजले परशुराम क्षेत्रे स्नानमहंकरिष्ये ।

अर्घ्यदान-मन्त्र

किरीटिन्नीलवासश्च रत्नमाला विभूषित ।
गृहाणार्घ्यं मयादत्तं भवबन्ध विमुक्तये ॥

अशोक कलिका पान—मन्त्र

त्वामशोक हराभीष्ट मधुमास समुद्भव ।
पिबामि शोक सन्तप्तः माम शोकं सदाकुरु ॥

कामाख्या ध्यानम्

रविशशियुतकर्णा कुङ्कुमापीतवर्णा,
मणिकनकविचित्रा लोलजिह्वा त्रिनेत्रा ।
अभयवरदहस्ता साक्षसूत्रप्रहस्ता,
प्रणतसुरनरेशा सिद्धकामेश्वरी सा ॥
अरुण कमलसंस्था रक्तपद्मासनस्था,
नवतरुणशरीरा मुक्तकेशी सुहारा ।
शवहृदि पृथुतुङ्गा स्वाङ्घ्रियुग्मा मनोज्ञा,
शिशुरविसमवस्त्रा सर्वकामेश्वरी सा ॥
विपुलविभवदात्री स्मेरवक्त्रा सुकेशी,
दलितकरकदन्ता सामिचन्द्रान्वम्रा ।
मनसिज-दृशादिस्था योनिमुद्रां लसन्ती,
परमगमनभक्ता संश्रुतस्थान भागा ॥
चिन्त्या चैवं दीप्यदग्नि प्रकाशा,
धर्मार्थाद्यैः साधकैर्वाञ्छितार्थैः ॥

(कालिका पुराण द्विषष्टितमोऽध्याय)

कामाख्यास्तोत्रम्

जय कामेशि चामुण्डे जय भूतापहारिणि ।
जय सर्व्वगते देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
विश्वमूर्ते शुभे शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने ।
भीमरूपे शिवे विद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
मालाजये जये जम्भे भूताक्षि क्षुभितेऽक्षये ।
महामाये महेशानि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
भीमाक्षि भीषणे देवि सर्व्वभूत-क्षयङ्करि ।
करालि विकरालि च कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
कालि कराल विक्रान्ते कामेश्वरि हरप्रिये ।
सर्व्वशास्त्रसारभूते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
कामरूप-प्रदीपे च नीलकूट-निवासिनि ।
निशुम्भ-शुम्भमथनि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
कामाख्ये कामरूपस्थे कामेश्वरि हरप्रिये ।
कामनां देहि मे नित्यं कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
रुधिरासवपानाढ्यवक्त्रे त्रिभुवनेश्वरि ।
महिषासुरवधे देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
छागतुष्टे महाभीमे कामाख्ये सुरवन्दिते ।
जय कामप्रदे तुष्टे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्द्दश्यामुपवासी नरोत्तमः ।

संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कण्टकं पुनः ॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या तन्त्र देवि समुद्भवम् ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥

श्रीकामरूपेश्वरि भास्करप्रभे, प्रकाशिताम्भोजनिभायतानने ।
सुरारि–रक्षः-स्तुतिपातनोत्सुके, त्रयीमये देवनुते नमामि ॥
सितासिते रक्तपिशङ्गविग्रहे, रूपाणि यस्याः प्रतिभान्ति तानि ।
विकाररूपा च विकल्पितानि, शुभाशुभानामपि तां नमामि ॥

कामरूपसमुद्भूते कामपीठावतंसके ।
विश्वाधारे महामाये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
अव्यक्त विग्रहे शान्ते सन्तते कामरूपिणि ।
कालगम्ये परे शान्ते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
या सुषुम्नान्तरालस्था चिन्त्यते ज्योतिरूपिणि ।
प्रणतोऽस्मि परां वीरां कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
दंष्ट्राकरालवदने मुण्डमालोपशोभिते ।
सर्व्वतः सर्व्वगे देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥
चामुण्डे च महाकालि कालि कपाल-हारिणि ।
पाशहस्ते दण्डहस्ते कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥ *
चामुण्डे कुलमालास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रे महाबले ।
शवयानस्थिते देवि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥ *

[योगिनीतन्त्र । द्वितीय भाग । सप्तमपटल]

* मूल "कामाख्या माहात्म्यम्" से उद्धृत ।

कामाख्या–कवचम्

ओं कामाख्याकवचस्य मुनिर्वृहस्पति स्मृतः।
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप् छन्द इष्यते ॥
विनियोगः सर्व्वसिद्धौ तञ्च श्रृण्वन्तु देवताः।
शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ॥
शारदा कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं तथा ।
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ॥
कामाख्या जठरे पातु शारदा पातु नाभितः।
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ॥
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ।
जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयो ॥
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा।
केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ॥
भैरवी दन्तसङ्घाते मातङ्ग्यवतु चाङ्गयोः।
बाह्वोर्म्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनो।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलीषु श्रीकामा नखकोटिषु।
रोमकूपेषु सर्व्वेषु गुप्तकामा सदावतु ॥
पादाङ्गुलि पार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी।
जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ॥
पातुनश्चान्तरे वक्षः ईः पातु जठरान्तरे।

समिन्दुः पातु मांवस्तौ विन्दुर्व्विद्धन्तरेऽवतु ॥
ककारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्व्वदा ।
लकाराः सर्व्वनाड़िषु अकारः सर्व्वसन्धिषु ॥
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु विन्दुर्मज्जासु सन्ततम् ।
पूर्व्वस्यां दिशि चाग्नेयां दक्षिणे नैर्ऋते तथा ॥
वारुणे चैव वायव्यां कौवेरे हरमन्दिरे ।
आकाराद्यास्तु वैष्णव्या अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः ॥
पान्तु तिष्ठन्तु सततं समुद्भवविवृद्धये ।
ऊर्द्धाधः पातु सततं मान्तु सेतुद्वयं सदा ॥
नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदा मन्त्रगोचरे ।
नवस्वरन्तु मां नित्यं नासादिषु समन्ततः ॥
वातपित्तकफेभ्येस्तु त्रिपुरायास्तु त्राक्षरम् ।
नित्यं रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च ॥
तत् सेतु सततं पाता क्रव्याद्भ्यो मान्निवारकौ ।
नमः कामेश्वरीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ॥
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्यं तनोति जगदायतम् ।
कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां,
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम् ।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठमतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्या,
मग्नौ विन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि सिद्धौ रतिस्थाम् ।
मध्ये मध्यस्य भागे सततविगमिता भावहावावली या,
लीला लोकस्य कोष्ठे सकलगुणयुया व्यक्तरूपैकनम्रा ।

बिद्या बिदैत्यकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वराश्वा,
नित्यं पायात् पवित्रप्रणववरकरा कामपूर्वेश्वरी नः ॥
इति हरकवचं तनुस्थितं शमयति वै शमनं तथा यदि ।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चामरैः ॥

इतीदं कवचं यस्तु कामाख्यायाः पठेद् बुधः ।
सकृत् तं तु महादेवी अनुव्रजति नित्यदा ॥
नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्यादभो भयं तथा ।
नाग्नितो नापि तोयेभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः ॥
दीर्घायुर्व्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
आवर्त्तयन् शतं देवी मन्दिरे मोदते परे ॥
यथा तथा भवेद्बद्धः संग्रामेऽन्यत्र वा बुधः ।
तत्क्षणादेव मुक्तः स्यात् स्मरणात् कवचस्य तु ॥

[कालिका पुराण द्विसप्ततितमोऽध्याय]

—:*:—

परिशिष्ट

इस पुस्तक में कामाख्या तीर्थ और कामरूप के प्रधान तीर्थों का पौराणिक, विवरण, माहात्म्य, ज्ञातव्य कहानियां, तत्व एवं तथ्यादि संक्षेप में वर्णन किया गया है। परिशिष्ट में यह सूचित किया गया है कि कभी इन तीर्थ स्थानों के प्रति राजा प्रजा धनी-दुःखी सबों की अगाध भक्ति थी। यहाँ तक कि इस कामरूप की महाशक्ति स्वरूपिणी कामाख्या देवी की महिमा गुण आदि देखकर हिन्दु ही नहीं मुसलमान बादशाह आदि भी भक्ति निदर्शन स्वरूप ब्रह्मोत्तर, देवोत्तर, स्थान, भूमि, झील और नदी आदि दान कर गये हैं। मुसलमान बादशाहों के दानादि के विषय में केवल यही कहना पर्याप्त है कि 'अल्लाइयार-खाने', 'हासान कन्दारी खान' आदि शासक कर्त्ता गण पाण्डु के निकट मालीगाँव में श्रधावल्लभ और प्राणनाथ के नाम से तुरूकपाड़ा मैदान में दोबीसी जर्मान कामाख्या मन्दिर के पुजारियों को विशेष सनद के साथ दान कर गये हैं। इनके बाद १०७८ हिजरी (१६५६ ई० में) दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के समय में शासन कर्त्ता मंसूरखां ने उक्त तुरुकपाड़ा की पूर्व सनद को अक्षुण रखकर फारसी भाषा में एक नया सनद प्रदान किया है!

विशेष रूप से इस तीर्थ स्थान और मन्दिर को केन्द्र बनाकर प्राचीन कामरूप की संस्कृति, सभ्यता, समृद्धि, शिल्पकला, भाष्कर्य आदि विद्याओं ने विशाल भारतवर्ष और दूर देशों में एक महान उज्वल आदर्श उपस्थित किया था। इन मन्दिरों की विशेषता के कारण ही ये नाना विप्लवादिकों में भी अक्षुण रहे हैं।

इन मन्दिरों को प्रतिष्ठा तथा कामरूप की संस्कृति के हेतु जो जो दान इत्यादि प्राप्त हुए हैं, उनके निर्देशन के लिये यहां (क) कुछ शिला एवं ताम्र लिपियों की प्रतिलिपि दी जाती है। तीर्थाभिलाषी, धर्मजिज्ञासु, पाठक पाठिका, एवं अन्वेषक विशेषज्ञ कामरूप तीर्थ माहात्म्य के साथ साथ इसके गौरवोज्ज्वल प्राचीन कीर्ति कहानियों की ओर भी आकृष्ट हो इसलिये तथा नाना प्रकार के तथ्य विवरणादि संग्रह करने का उनको सुयोग मिले इस अभिप्राय से ये लिपियां नीचे दी जाती है। (ख) इकावन महापीठों और २६ उपपीठों की तालिका साथ में संलग्न है। शेष में (ग) कतिपय जानकार विषयों के बारे में लिखा गया है।

(क) कतिपय शिलालिपियों की प्रतिलिपि

(१) देवी की चलन्ता मन्दिरस्थ कोचराजा नरनारायण और चिलाराय की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

लोकानुग्रहकारकः करुनया पार्थोधनुर्विद्यया
दानेनापि दधीचि कर्ण सदृशो मर्यादयाम्भोनिधिः।
नानाशास्त्र विचारचारुचरितः कन्दर्परूपोज्वलः
कामाख्याचरणार्च्चकोविजयते श्रीमल्लदेवोनृपः॥
प्रासादमद्रिदुहितुश्चरणारविन्द भक्ता करोत्त दनुजा वरनीलशैले।
श्रीशुक्लदेवईम सूल्य सितोपलेन शाके तुरङ्ग गजवेद शशाङ्क संख्ये
तस्यैव प्रियसोदरः पृथूयशावीरेन्द्र मौलिस्थलि।
माणिक्यं भजमान कल्पविटपी नीलाचले मञ्जूलं॥
प्रासाद मुणिनागवेदशशभृत्शाके शिलाराजिभिः॥
देवी भक्तिमताम्बरो रचितबान श्रीशुक्लपूर्व्वध्वजः॥

१४८७ शाक (१५६५ ई०)

(२) देवी के नाटमन्दिर के भीतर आहोमराजा राजेश्वर सिंह की शिलालिपि को प्रतिलिपि—

७ स्वस्ति कामाख्या चरणाम्बूँजाच्छँनपरोध
र्म्मेन धम्मौंपमोरूपेनालिपत पंचशायक

मद: स्वर्गेशवंशोद्भव: दिक्चक्रक्रमन प्र
वीण विकसत्कुन्दोल्लभ सत्सुयशा: श्रीराजे
श्वर सिंह भूपतिवरो भूलोक कल्पद्रुम: ।। यो
भूपानत मौलिरत्नविल सत्पादार विन्दद्वयोभ्य
भून्नीविलतौधनृतनुधन: कोदण्ड विद्यार्ज्जुन: । पा
रावार गभीर ऊँजिततरादिव्य प्रतापो महादोर्द्द
ण्डाति प्रचण्ड वैरी निवह प्रोद्भमदावानल: ।। तस्या
ज्ञांदधदा दरेण शिरशि स्वर्गावरोहावधि स्वर्गेशा
न्वय भूप सेविदुवरावंशोत्र नीलाचले कामाख्यां
ङ्घ्रि परायनो दशरथ: श्रीयुद्दंहत्फुवकन: कामाख्यात् से
व मन्दिरं क्षिति वसुस्वादेन्दूशाके करोत् ।। १६८१ (१७५६ ई०)

(३) देवी के नाटमन्दिर में आहोमराजा गौरीनाथ सिंह की ताम्रलिपि की प्रतिलिपि—

ॐ भूपालश्रेणी मौलिप्रकर मधूकराकीर्न्न पादारविन्द: कामाख्या पादपद्मांर्च्छन जनित महोद्दीप्त शुधान्तरात्मा । श्रीगौरीनाथसिंहानृप कुलतिलकोदान कल्पद्रुम कल्पोविख्याता खण्डलीय:न्वयनलिनकुलोद्दाम धामावर्कतुल्य: ।। कोदण्डाञ्जित वाहुदण्डदलन प्रत्यर्थि शुष्कोकङ्कनज्वालाजाल कराल काल कवलो पूर्व्व: प्रतापनल: । तद्रुमा कुलवेरि बृन्दँललपा लोलप्रुधारा हरिद्रव्यां पादितहेति कोटि विलसन्नास्ते तदीय: सदा ।। दोर्द्दण्ड प्रबल प्रताप निकर प्रोद्दीप्त दावानलो दग्धानेक विपक्षकक्ष निचय: संग्रामभीतिप्रद: । यन्नामश्रवनात् सहस्त्रनयन:

प्राप्नोति शङ्कां जगत्याश्चर्य्यः परएषएव महतां वाच्यः किमन्यो गुण. । यः पित्रा राज्यभारोद्वहन निपुनतां विक्ष्यराज्ञे नियुक्तः साम्राज्ये नोतिशास्त्रामल गहनमति र्ल्लोकरक्षा प्रवीणः लक्ष्मीर्मासिंहाख्य भूपात्मज गुणनिकर ग्राम विश्रामधामा धीरस्ता दृङ ' नरेन्द्रो निखिल गुणनिधिर्न्नास्ति नासिन्नभारी एतुस्यैव प्रताप वह्निनिचयेस्वात्माभिमानोतसुका शुण्डादिन्निबहा यदालभतां प्राप्ताद्विषत् कम्पंना । अङ्गीकृत्यतदास लक्षकवलिं- दात्तु ' सुधीराग्रणीः कामाख्या प्रमदोत कटाय हृदयं प्राधाद्विषां नासने ।। श्लाघ्यं लक्षवलिं शुभाय महते श्रीस्वर्गनारायणः शक्त साधयित्तु ' प्रतिश्रूतमिदं कामन्त्रिणां मे भवेत् । इत्या लोच्य मुहूर्मुहू सगुरू नामात्ये नटे वादिनि द्वारावंश समुद् भवं सुविभवं श्रीमत्वृहत फुक्कनं गाम्भिर्योद्र्यधर्य्यैं गुनैर्जितजलधिरयं पालिताशेषलोकोभेदाद्य वेदैःख्ये रतिशय वलिभिस्तै रूपायैव खण्डे । शोर्यैः संग्राम यज्ञेर्ज्जुन इवरि पूजित् कोर्तितातूल्य कोर्तिनेदृक संदृश्यमानो नृपवर सचिवनैव पूर्व्वनपश्चात् ।। प्रख्याते दूवराकूलेक्षितितले जातो महाधर्मिकः श्रीमान श्रीवड़फुक्कनो हरपुरो नाथाभिधानः कृतिः ।। प्राग्ज्योतिषपुर मेछुछाग, महिष्यैः पारावताः दौर्वलीं देव्यौ लक्षमितं विवच्य हितहृद्राज्ञो नृपाङ्गीकृतम ।। लोकानुग्रहितम् परायण मतिर्नैता प्रजानां सदा कामाख्या शततं निधाय हृदये नित्यां सुरः सेवितां ।

वर्न्नाकां गमुनिक्ष पाकरमिते शाके शुभे वह्निमुद प्रारभ्या

नदिन: सलक्षकबलिं प्रादापयपत्फुक्कन: ।। शक १७०४ ।।
(१७८२ ई०)

(४) शत्रु के हाथों से राज्य रक्षा सम्बन्धी आहोम राजा शिवसिंह का स्मृति चिन्ह कामाख्या पर्वत संलग्न दक्षिण की ओर पाण्डु गोहाटी राज पथ के पार्श्व में कार्टिनामस्था स्थान की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

ॐ स्वस्ति श्रीहरगौरी पदारविन्द मकरन्द मन्दोहविलीनमाना मधुकर प्रवरमा अवनीनायक परमकरुणा- वरुणा लयस्यशुभ्रयशोराशिमण्डिताशेष मेदिनी मण्डलस्य वासववंशातांश श्रीश्रीमत् शिवसिंह नृपालकस्य निदेशात: तदीय सेनापतिवर सकलसंसार मङ्गलागार हारकैलाश काल कार्पसहिण्डीर पिण्ड-दुग्ध मूग्ध कीर्तिमण्डल मण्डिताशेष दिग्दिगान्तरालेन श्रीकेशव पद पंकज भृङ्गवरेण श्री मद्दिद्दिङ्गीय वरफुक्कनेन प्रागज्योतिषपुर प्रत्यगद्वार मृदशिलेष्ठकादि निर्म्मितया मतोद्विपञ्चाशदधिक शतधनुमित प्राञ्चो द्विविंशत्यधिकद्विशत धनुमित परिखादिभिरलङ्कृत माषित वेद विशिख वेदाङ्ग शशधर शाके १६५४ (१७३२ ई०) ।

(५) नीलाचलपर केदारक्षेत्र मन्दिरावस्थित आहोम राजा राजेश्वरसिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

स्वस्ति श्री श्रीसौमारेश्वर राजेश्वर सिंह नृपाज्ञाया तरुण

दूवरा बृहतफूक्कनेन श्रीकेदारलिङ्गपरि मठोयमकारि राम मुनिर सेन्दू शाके । १६७३ शके (१७५१)

(६) नीलाचल के आम्रातकेश्वर मन्दिर स्थित आहोम राजा प्रत्तमसिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

ॐ स्वस्ति नृपवृन्द वन्दित पदद्वन्दारबिन्द विपक्ष पक्ष क्षयतीक्ष्न नानायुध वृन्द दिगसनासन धनस्तन हाराकारा स्फारयशो मण्डल शलयकोजलप्रवलानल तुल प्रतापाखण्डल निरन्तरवित्तवितरन विड़म्बित ग्रोर्वान द्रमफलौ कलाप करन्वित-नय चयन्यक हृतवाकपतिनितिक्रम भूचक्र शत्रु वंशावतंश सेवमानव नगन मानस राजहंस श्रोश्रीमत् स्वर्गदेव प्रमत्तसिंह नृपेन्द्रानौ चारुचरण सरोरुह रोल सगुन ग्रामाभिराम नित्ती-तिरस्कृत महामन्त्रि कदम्ब स्वर्गावतारावधि स्वर्गराजासे विक्कुल कानन पन्चानन श्रोयुतृतरूनद्ववरा बृहत् फुक्कन स्तन्नरेन्द्राज्ञया श्रोश्रीअम्रातकेस्वरस्य मठमिमगचरयत गुणगुण गुणाब्ज साके १६६६ शक (१७४४ ई०)

(७) उमान्नद स्थित आहोम राजा गदाधर सिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

स्वस्ति प्रचण्ड दौर्द्दण्ड कलित दण्ड कोदण्ड निक्षिप्त काण्ड खण्डितो दण्ड वैरि चय मुण्डाशेष सामन्तुचक्रचुड़ामणि मरीचि-मञ्जरी बिराजित चरण कमल हरहार हिमहिर हिण्डिर पिण्ढ

पाण्डुरित यशोराशि परिपुरिताङ्ग वङ्ग कलिङ्ग तैलङ्ग सौराष्ट्र मगधाद्यशेष देश विशेष कुपाकुप्य वितरण सन्तोषित भूशपर्व सौन्दर्य गाम्भीर्य मर्य्यादा दया नयाचार विचार दाक्षिण्य दक्षताढ्य क्षमागुण ग्रामाभिराम शक्रवंशावतंक पदारविन्द मकरन्द मधुकर सोमारेश्वर श्रीश्रीमत् गधाधर सिंहाज्ञया श्रीगड़गया सन्दिकै बृहत्फुक्कन: सकलवृन्दारकवृन्द राजेश्वर: श्रीमदुमानन्दोपरि मठमचोकरत् रस क्षमा तर्केन्दु सख्य शाके।

१६१६ शाक (१६६४ ई०)

(८) उमानन्द में आहोम राजा शिवसिंह के द्वारा रूप-निर्म्मित वृषभ वाहन चलन्ता मूर्ति के सिंहासन के चारों ओर खोदित प्रतिलिपि—

गौरीशांघ्री सरोजभृङ्ग मघवद्वंशावतं मायित श्रीमत् श्री शिवसिंह राजमुकुटादेशं दधन्मूर्द्धणि सामन्त: दुवराणवये नय पटुर्व्विदुचन बृहत फुक्कनोतानीममूर्ति मिला कला शशि शाके शम्भोरिमां राजतीं। १६४१ शाक (१७१९ ई०)

(९) अश्वक्रान्त में आहोम राजा शिवसिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

अत्रेरस्य जनार्द्दनस्य सिद्धाभिषेकोत्सव:। श्री विष्णु कृपया तदीय शिखरे ततसम सम्पादने सानन्दो नृपवृन्द वन्दित पदारविन्द सुधीर्द्दिव्य: श्रीशिवसिंह उर्ज्जित—तरादित्य प्रतापोनृप: भूभृन्नीतिल ताति नूत नघन कोदण्ड विद्यार्ज्जुणो

बन्दारूणिणयादव पादकमलं भूलोककल्पद्रुम: पारावार गभीर उज्जवल यशश्चन्द्रो महेन्द्र शयज्जातो भीमपराक्रमो विजयते धन्य: शरण्योनृणाम् तस्याज्ञामभिधायं मुन्द्धि विजयो नाम्नोर्थत: सादरात श्रीमान केशव पादपद्ममधुप: स्वर्गावताराबधि श्रीमत् स्वर्गनरेन्द्रसेवी दुवरा वृहत सैन्यपो वेश्मैतादयार्ज्जितक्कं शशाभृत शाकेऽ करोत तत्श्रीपते: । १६४२।। शक (१७२० ई०)

(१०) मणिकर्णेश्वर में आहोम राज राजेश्वर सिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

स्वस्ति समस्त संसरो संसार पारावार यातनाबार निवारण चतुरतर सुरबर शिरोमणि मणीश्वर महेश्वर चरण छायानुसरण परायण प्रणमद्वणीशगण मौलिमाला प्रभाराजि विराजित पादपीठतल सकल भूमण्डल पुरन्दर कुल कुमुद वान्धव सम समरसीम णि:सीम भीमविक्रम प्रच्छावच्चात गोष्पति नीतिक्रम महामहिम श्री श्री मद्राजेश्वरसिंह नृपसिंह प्रियतम सेनापति प्रधानधन्य ब्रह्मण्य जनाग्रहीतृपित पान्डूर सुन्दर कीर्तिनिकर कर दुर्जय बैरी वर बाधन विदारण पंचानन महित महाशय स्वर्गावरोहावधि स्वर्गेशवंश नृपेशसेवी वंशावतंश श्रीतरुण वृहतफुक्कन तनय; श्रीयुद्दशरथ दुवरा वृहतफुक्कन तन्नृप सिंहाज्ञया मणिगिरिवरे श्रीश्रीमणीश्वर महेश्वरस्य रुचिव मठमिमरचयद्वयगिरिरस शशी शाके । १६७७ शक ॥ (१७५५ ई०)

(११) वशिष्ठाश्रमस्थ आहोम राजा राजेश्वर सिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

श्री राम ॐ ७ स्वस्ति निःसीम भीमपराक्रम प्रबल वैरीबण प्रलय कालानल सम्पूर्ण गुणगणैकधाम भवभवानी पदारबिन्द मकरन्द मधुकर शत्रुकुल कुमुदेन्दु श्रीश्रीमद्राजेश्वरसिंहनि देशेन्द्र नीळावलम्बिमौलि तदीयचरण चारण चक्रवर्त्ती कुन्दावदात कीर्ति समरवीर पारावार गम्भीर विद्याविद्योतितान्तःकरण श्री गोबिन्द पादाब्जावलम्बनवाहिनीपति श्रीमद्न्नूजदूवारा वृहत-फुक्कनात्मज श्रीमत्‌तरूणदूवरा वृहतफुक्कनतनुज श्रीमत्‌दशरथा-भिधेय सेनाध्यक्षो वशिष्ठाश्रमगिर्य्यूपरिप्रासादमची करर्त्तक नागर सेन्दु शाके ।। १६८६।। शक। (१७६४ ई०)

(१२) नवग्रहस्थित आहोम राजा राजेश्वर सिंह की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

स्वस्ति स्मरहरचारण वैरिवारण दारण पंचानन प्रतापतपन नृपनिकर शिरोरत्न नीतिरत्नाकर शशधर प्रवर यशोधर वाशव वंशावतंश श्रीश्रीमद् स्वर्गनारायण राजेश्वरसिंह नरेश्वराणामा-देशतः तन्मन्त्री प्रवर प्राग्ज्योतिः पुराशेश सेनानायक यसोजित सुधाराति तिमिर मिहिर स्वर्गाबतारवधि स्वर्गानरेश-सेवि वंश विभूषण श्री मत्तरूणदुवरा वृहत्त फुक्कनो विचित्र चित्रालय नवग्रहात्मक शिरोपरि नवरत्नाख्यमथमि ममचिकरद्वेदाद्रि रसेन्दू शाके ।। १६७४ शक ।(१७५२ ई०)

(१३) कोच राजा रघुदेव की पाण्डुनाथस्थित शिलालिपि की प्रतिलिपि—

श्रीमन्मल्लनृपानुजस्य कृतिनः शुक्लध्वजस्यात्मजे वीरे श्रीरघुदेव भूपति कूलोत्तंसे कलानां निधौ । दुर्गादत्तवरेण शासति गुणग्रामाभिरामे महीं तस्या मात्य गदाधरस्य बहुशं स्नेहानु कुल्यादपि ।। श्रीपाण्डुनाथस्य हरेः शिलाभिः प्रासादमानिर्म्मितवा-नमनेज्ञं पयोनिधि विष्णुपदैकतानः शाके स्वरव्योम शरेन्दु संख्ये । १५०७ शक [१५८५ ई०]

(१४) कोचराजा रघुदेव को हयग्रीव माधवस्थित शिलालिपि की प्रतिलिपि—

श्रीश्रीमत् श्रीविश्वसिंहः क्षितिपतिरभवत्ततसुतः ख्यातकीर्तिः । श्रीमत् श्रीमल्लदेवो नृपतिरतिमतिर्निर्ज्जितोरातिजातिः । गाम्भीर्योदौर्य्यशौर्य्यप्रथितपृथुयशोधर्म्मकर्म्मावदातः । श्रीमत् शुक्लाध्वजाख्यो व्यजनि तदनुजो यद्वशेऽशेषदेशः । साक्षाद्राघरपुङ्गवो दिशि दिशि प्रख्यातकीर्तिव्रजे । हन्तापूण्यजनस्य यो विधि वशात् यः कामरूपेश्वरः । यो सो वाखिललोकशोकदहन ज्वालावली वारिदः । श्रीमत् श्रीरघुदेव भुपतिरभुत् शुक्लध्वजःमौरसः । तस्याशेषजनप्रसादजनकः श्रीकृष्णपादार्च्चको । भूपःप्राप्तवराः गदाधरकृती प्रासादरत्नं व्यधात् । मन्याख्याणगिरौहयासुरारिपो रत्नाश्ममानास्पदं । शाके वाणवियत्तिथौ गुनिवरो कारीः स्वयं श्रीधरः ।। १५०५ शक । [१५८३ खष्टाब्द]

(१५) आहोमराजा प्रमत्तसिंह की हयग्रीव माधव दौलस्थित शिलालिपि की प्रतिलिपि—

ॐ स्वस्ति श्रीदेवादिदेव सुरासुर वन्दितचरण हयासुर मङ्गल मर्द्दन नामा गीतवाद्यमङ्गल प्रीत्युत् सवानन्द श्रीश्रीहयग्रीव माधवदोलनान्दोलन विनोद विलासाय दान वितरण दध्याञ्चि कर्णोपम समर विजयो नृपणिकर चूड़ामणि स्वर्गेशवंशावतंश श्रीश्रीप्रमत्तसिंह महाराजाधिराजज्ञया श्रीमाधव-चरण परायण श्रीतरुणदुवरा वृहतफुक्कनेन मनिकुट गिरौ फल्गुत्सव दोलायाम कारि पक्षमुणि रसात्रिनयन शाके १६७२ शक। [१७५० खृष्टाव्द]

[१६] आहोमराजा राजेश्वरसिंह की केदार मन्दिर स्थित शिलालिपि की प्रतिलिपि—

ॐ ७ स्वस्ति समस्त सुरासुर शिरोरमणीय मणिवर श्रीश्री हरिहर गौरीचरण नखचन्द्र चकोर वासववंश सरोरूह मणिकर दिनकर कामरूप सौमारेश्वर धर्म्म धार्म्मिक पालन परायन श्रीश्रीराजेश्वरसिंह धराधिनाथ स्ततूपदारविन्द मधुकर ढुवरान्वय सम्भूत श्रीयुत तरूण गदाधर वृहतूफूक्कनात्मज सकल गुण-निधान रत्नाकर श्रीदशरथ ढुवरावृहतफुक्कनेन मदनगिरिवरे केदाराख्य शिव मन्दिर वेष्ट कामेष्ट कालय प्राकारद्वागो निर्म्मितौ। आकाशदन्तावलर सेन्दु शाके॥ १६८० शक (१७५८ खृष्टाव्द)

[१७] हयग्रीव माधव मन्दिरस्थित द्वितीय माधव की ताम्रलिपि की प्रतिलिपि—

श्रीश्रीस्वर्ग नारायण देव श्रीकमलेश्वरसिंह
नरेश्वराणाम्

प्रत्यश्रौशीद्धरित्रीं द्विजगण विदुषे भूप भूंमाञ्चित श्रीः श्रीगोपीनाथ सिंहः शकल वसुमति कीर्त्तित श्रीनरेन्द्रः। प्रायाशीत् कृष्णनामामृत ममलं ससिपीयात्म वक्रेण स्वाद्धि पूर्व्वगेहं पुनरपि नितरां शक्रवंशावतारः योभूत श्रीकमलेश्वरादिपदतः सिंहो नृसिंहेश्वर दुर्गा दुर्ग पदारविन्द विगलमाध्वीक प्राच्छन्व्यलि पूर्णानन्दस्वमन्त्रिना सुकृतिना विज्ञापिता साधवा दातुं भूपतये महेन्द्रजसुरे तस्मैपरं धर्म्मदाराज्ञा तेनैव नन्दितः श्रीमत् प्रताप-बल्लभः सन्दिकै कुलजो मन्त्रि प्राददत् भूमिकां चतां तद्रक्षणाय ताम्रीयं साक्षरां पत्रिकामिमां॥ नाना गोत्रज्ञ विप्रेभ्य ददः भूजादिमैत्रके॥ १७२२ शक [१८०० खृष्टाब्द]

[१८] पञ्चम शताद्धि की शिलालिपि की प्रतिलिपि—

यह शिलालिपि कामाख्या पहाड़ के पूर्व दिशा में अवस्थित वर्तमान उमाचल आश्रम के रास्तेपर एक पत्थर के ऊपर खुदी हुई है। आसाम प्रादेशिक म्यूजियम की ओर से इस शिलालिपि की लिपि उद्धृत की है।

(१) महाराजाधिराज श्री

(२) सुरेन्द्रवर्मन कृतम्

(३) भगवतः वालभद्र

(४) स्वामीनाथ इदम् गुहम्

अनुवाद

इस गुह मन्दिर को महाराजाधिराज सुरेन्द्र वर्मन ने भगवत बलभद्र स्वामी के लिये निर्माण किया था। सम्भवतः आसाम के सुरेन्द्रवर्मन, वर्मन वंशीय राजा महेन्द्र वर्मन का दूसरा नाम था। महेन्द्र वर्मन का राजत्व काल ५ पञ्चम शताब्दी का थी। इसलिए यह शिलालिपि बहुत ही प्राचीन तथा मूल्यवान हैं।

(ख) ५१ महापीठ तथा २६ उपपीठ की तालिका

[महापीठ तथा उपपीठ के सम्बन्ध में बहुमतवाद । कोई महापीठ मतान्तर अनुसार अस्वीकृत एवं कोई उपपीठ मतान्तर के हिसाब से महापीठ कहकर स्वीकृत। उप=उपपीठ; म:=मतान्तर; ज्ञानेन्द्रमोहनदास विरचित 'बंगला भाषा अभिधान' से निम्न तालिका उध्दृत हुई है।]

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरव
१	ब्रह्मरन्ध्र	हिंगुलामें (वेलुचिस्थान)	कोट्टरी	भीमलोचन
	किरीट (उप)	किरीट कोनामें	भुवनेश्वरी (विमला)	किरीट वा सिद्धरूप [म:सम्वर्ध]
	केश (उप)	केशजाल में (वृन्दावन)	उमा	भूतेश
	मुण्ड (म: महापीठ)	कालीघाट में (काटोया)	जयदुर्गा	अभीरुक

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरव
२	मनः (मः भ्रुमध्य)	वक्रनाथ में	पापहरा (महिषमर्दिनी)	वक्रनाथ
३	त्रिनेत्र	सर्करे [करवीरपुर में]	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
४	नेत्रांश-तारा	तारामें	तारिणी	उन्मत्त
५	वामकर्ण	(मः करतोयातटमें कर्ण· (वगुडा) द्वय) श्रीपर्वतमें	अपर्णा	वामेश मः(मः वामन) (मः अभीरुक)
६	दक्षिण कर्ण—	(मः कर्णाटमें)	सुन्दरी (सुनन्दा)	जय-सुन्दरानन्द दुर्गा (मः नन्द) (मः अभीरुक)
	कुण्डल (उप)	बाराणसीमें	विशालाक्षी वा अन्नपूर्णा	कालभैरव या विश्वेश्वर
७	नासिका	सुगन्धामें (वरिशाल)	सुनन्दा	त्र्यम्बक (मः बटुकेश्वर)
८	वामगण्ड	गोदावरी में	विश्वमातृका	विश्वेश

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी या भैरवी	भैरव
				(म: दण्डपाणि)
	वामगण्डांश (उप)	उत्तरामें	उत्तरिणी	उत्सादन
६	दक्षिण गण्ड (उप)	गण्डकीमें	गण्डकी चण्डी	चक्रपाणि
	दक्षिण गण्डांश	नलश्थलमें	भ्रमरी	विरुपाक्ष
१०	ऊर्द्ध दन्तपंक्ति	अनले	नारायणी	संकुर
		(म: शुचिदेशमें)		(म: संहार)
११	अधोदन्तपंति	पंचसागर में	वाराही	महारुद्र
१२	जिह्वा	ज्वालामुखी	अम्बिका	बटुकेश्वेर
		(पंजाब जलन्धर)		वाउन्मत्त
	उच्छिष्ट (उप)	नोलाचल में	विमला	जगन्नाथ
१३	ओष्ठ (म: ऊर्द्ध ओष्ठ)	भैरव पवत में	अवन्ती	नम्रकण
		(अवन्ती देश)	(महादेवी)	(म: लम्बकण)
	ओष्ठांश	अट्टहासमें	फुल्लरा	विश्वनाथ

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरव
	(म: अध: ओष्ठ)	(कलकत्ता के अदूर लाभपुरमें)		
१४	अधर (म: उदर)	प्रभास में (मथुरामण्डल)	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
१५	चिवुक	जनस्थानमें (मध्यप्रदेश)	भ्रामरी	विकृताक्ष
१६	कण्ठ	काश्मीर में (अमरनाथ)	महामाया (म: भगवती)	त्रिसन्ध्य (म: त्रिसंधेश्वर)
	कण्ठहार (उप)	अयोध्या में	अन्नपूर्णा	हरिहर
	हारांश उप)	नन्दीपुरमें (साँइथिया के निकट)	नन्दिनी	नन्दीश्वर वा नन्दीकेश्वर
१७	ग्रीवा	श्रीहट्टमें	महालक्ष्मी	सर्वानन्द
	ग्रीवांश (उप)	श्री शैलमें	सर्वेश्वरी	चर्चितानन्द
	शिरानलि (उप)	नलहाटी में	साफालिका	योगीश

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरव
	(म: नलि)		(म: कालिका)	
१८	वामस्कन्ध	मिथिला में (जनकपुर स्टेशन के निकट में)	महादेवी	महोदर
१६	दक्षिणस्कन्ध	रत्नावलीमें	शिवा वा कुमारी	शिव वा कुमार
	स्कन्धांश (उप)	वृन्दावन में	कुमारी वा कात्यायनी	कुमार
२०	मर्म	प्रभासखण्ड में	सिद्धेश्वरी	सिद्धेश्वर
२१	वामस्तन	जालन्धर में (ज्वालामुखी)	त्रिपुरमालिनी	भीषण
२२	दक्षिणस्तन म: जघनास्थि)	रामगिरि में (चित्रकुट पर्वत)	शिवानी	चण्ड
२३	हृदय	वैद्यनाथ में	नवदुर्गा वा जयदुर्गा	वैद्यनाथ
	शिरांश (उप)	कालपीठ में	चण्डेश्वरी	चण्डेश्वर
	वसा-चर्बि (उप)	गौरीशेश्वर में	युगाद्या	भीम

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरव
२४	पृष्ठ	वैवस्वत में (कालिकाश्रम)	त्रिपुटा (म: सर्वाणी	शमन कर्मा (म: निमिष)
२५	वामवाहु	वाहुलाय (काटोयाके केतुग्राममें)	वाहुला वा वाहुली	भीरुक
२६	दक्षिण बाहु	वक्रेश्वर में	वक्रेश्वरी	वक्रेश्वर
२७	वामकनुई	उजानि में (कोग्राम)	मंगलचण्डी	कपिलाम्बर
२८	दक्षिण कनुई	रणखण्ड में	वहुलाक्षी	महाकाल
२९	वामहस्त (म: दक्षिण हस्तार्ध)	मानससरोवर में (म: मानसक्षेत्र में)	दाक्षायणी	हर
३०	दक्षिण हस्तार्ध	चट्टग्राम में	भवानी	चन्द्रशेखर
३१	वाममणिबद्ध	मणिवद्ध	गायत्री	शंकर वा सर्वाण (म: सर्वानन्द)

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरव	भैरव
३२	दक्षिण मणिवद्ध	मणिवेद में	सावित्री	स्थाणु
	करांश (उप)	सतीचले	सुनन्दा	सुनन्द
३३	द्विहस्तांगुलि	प्रयाग में	कमला वा कल्याणी (म: ललिता)	वेणीमाधव (म: भव)
	माणिपद्म (उप)	यशोर में	यशोरेश्वरी (म: यशोरी)	प्रचण्ड (म: चण्ड)
	दण्डांश (उप)	संहर में	सुरेशी	सुरेश
	अस्त्र (उप)	चण्ड द्वीप में	चक्रधारिणी	शूलपाणि
३४	नाभि	उत्कल में (पुरी)	विजया (म: विमला)	जय (म: जगन्नाथ)
३५	जठर	हरिद्वार में	भैरवी	वक्र
३६	कक्ष	कोंक में	कोंकेश्वरी	कोंकेश्वर
	कक्षांश (उप)	सर्वसैन्य में	विश्वमाता	दण्डपाणि

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरवी
३७	कंकाल	कोशाई नदी तीर में कांची देश में (वोलपुर स्टेशन सन्निकट में)	वेदगर्भा	रुरु
३८	वाम नितम्ब (म: दक्षिण नितम्ब)	कालमाधवमें (शोणनद)	काली (नर्मदा)	असितांग वा असितानन्द (म: भद्रसेन)
३९	दक्षिण नितम्ब	नर्मदा में (कालमाधव)	शोणाक्षी	भद्रसेन
	नितम्बांश (उप)	शोण में	भद्रा	भद्रेश्वर
४०	महामुद्रा (योनि)	कामरूप में	कामाख्या देवी वा नीलपार्वती	उमानन्द वा राबानन्द
४१	वाम जानु	मालव में	शुभचण्डी	ताम्र
४२	दक्षिण जानु	स्त्रोताय में	चण्डीका	सदानन्द

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरवी
	(म: जानुद्वय)	(म: नेपाल में)	(म: महामाया)	(म: कापाली)
४३	वाम जंघा	जयन्तिया में	जयन्ती	क्रमदीश्वर
४४	दक्षिण जंघा	नेपाल में (म: मगध में)	महामाया वा नवदुर्गा (म: सर्वानन्दकरी)	कपाली (म: व्योमकेश)
४५	बाम चरण	तिरोता में (त्रिस्रोता)	अमरी (म: भ्रामरी)	अमर (म: ईश्वर)
४६	दक्षिण चरण	त्रिपुरा में	त्रिपुरा	नल (म: त्रिपुरेश)
	चरणांश (उप)	त्रिस्रोता में (जलपाइगुडी)	पार्वती	भैरवेश्वर
	नूपुर (उप)	लंका में	इन्द्राक्षी	रक्षेश्वर वा राक्षसेश्वर
४७	दक्षिण पदांगुष्ठ	क्षीरग्राम में (वर्द्धमान)	योगाद्या	क्षीरकण्ठ

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरवी
३८	वामपदांगुलो	विश्वशेखर में	विन्ध्यवासिनो	पूण्यभाजन
३९	दक्षिण चरणकी चारपदांगुली (म: पदांगुलि	काली घाट में कलकत्ता (म: विराट में)	कालिका (म: अम्बिका)	नकुलेश बालेश्वर (म: अमृत)
४०	वाम गुल्फ	विभास में वा विभासक में (तमलुक)	भोमरूपा	कपाली (सर्वानन्द)
४१	दक्षिण गुल्फ	कुरुक्षेत्र में	सम्वरी वा विमला (सावित्री)	सम्वर्त (म: स्थानु)
	चर्मांश (उप)	कटक में	कटकेश्वरी वा कात्यायणी	वामदेव
	लोम (उप)	पुण्डर में	सर्वाक्षोणी	सर्व
	लोमखण्ड (उप)	तैलंग में	चण्डनायिका	चण्डेश
	भग्नांश	श्वेतबन्ध में	जया	महाभीम

(ग)—ज्ञातव्य बातें—

कामाख्या पर्वत की उचाई

भुवनेश्वरी शृङ्ग ··· ··· ···	६९० फीट।
ब्राह्मणों (पांडा) के वासस्थान का सर्वोच्च स्थान	५८० फीट।
कामाख्या मन्दिर ··· ····	५२५ फीट।
वराह पर्वत ··· ···	४५० फीट।

कामाख्या पर्वत के अधिवासी

ब्राह्मणों (पांडा) की संख्या ···· ····	प्राय: १०००।
ब्राह्मणों (पांडा) के घरों की संख्या ···	१५०।
मन्दिर के अन्यान्य सेवको की संख्या ····	२०००।
मन्दिर के अन्यान्य अधिवासियोंके घरों की संख्या	२५०।

शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यवसाय

पर्वत के ऊपर एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल, प्राइमरी बालिका विद्यालय, चतुष्पाठी, कामाख्या लायब्रेरी एवं क्लब, कामाख्या नाट्य समिति, जलकष्ट निवारिणी समिति आदि है। बालक बालिकाओं की शिक्षा इन्हीं सब विद्यालयों में होती है। जो उच्च शिक्षा पाना चाहते हैं वे गौहाटी शहर स्थित हाई स्कूल कालेज एवं विश्व विद्यालय में पढ़ने जाते हैं। ऊँच्च शिक्षा

महापीठ की संख्या	पीठ	पीठस्थान	अधिष्ठात्री देवी वा भैरवी	भैरवी
३८	वामपदांगुलो	विश्वशेखर में	विन्ध्यवासिनो	पूण्यभाजन
३९	दक्षिण चरणकी चारपदांगुली (म: पदांगुलि	काली घाट में कलकत्ता (म: बिराट में)	कालिका (म: अम्बिका)	नकुलेश बालेश्वर (म: अमृत)
४०	वाम गुल्फ	विभास में वा विभासक में (तमलुक)	भोमरूपा	कपाली (सर्वानन्द)
४१	दक्षिण गुल्फ	कुरुक्षेत्र में	सम्वरी वा विमला (सावित्रो)	सम्वर्त (म: स्थानु)
	चर्मांश (उप)	कटक में	कटकेश्वरी वा कात्यायणी	वामदेव
	लोम (उप)	पुण्डर में	सर्वाक्षीणी	सर्व
	लोमखण्ड (उप)	तैलंग में	चण्डनायिका	चण्डेश
	भग्नांश	श्वेतबन्ध में	जया	महाभीम

(ग)—ज्ञातव्य बातें—

कामाख्या पर्वत की उचाई

भूवनेश्वरी शृङ्ग	... ...	६९० फीट।
ब्राह्मणों (पांडा) के वासस्थान का सर्वोच्च स्थान		५८० फीट।
कामाख्या मन्दिर	... ...	५२५ फीट।
वराह पर्वत	... ...	४५० फीट।

कामाख्या पर्वत के अधिवासी

ब्राह्मणों (पांडा) की संख्या	....	प्रायः १०००।
ब्राह्मणों (पांडा) के घरों की संख्या	...	१५०।
मन्दिर के अन्यान्य सेवकों की संख्या	....	२०००।
मन्दिर के अन्यान्य अधिवासियोंके घरों की संख्या		२५०।

शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यवसाय

पर्वत के ऊपर एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल, प्राइमरी बालिका विद्यालय, चतुष्पाठी, कामाख्या लायब्रेरी एवं क्लब, कामाख्या नाट्य समिति, जलकष्ट निवारिणी समिति आदि है। बालक बालिकाओं की शिक्षा इन्हीं सब विद्यालयों में होती है। जो उच्च शिक्षा पाना चाहते हैं वे गौहाटी शहर स्थित हाई स्कूल कालेज एवं विश्व विद्यालय में पढ़ने जाते हैं। ऊँच्च शिक्षा

लाभेच्छु विद्यार्थी-गण पर्वत से उतर कर मोटी बस द्वारा गौहाटी आते हैं। पर्वत के ऊपर एक डाकघर तथा एक सरकारी दातव्य चिकित्सालय भी है।

पर्वत के नीचे गौहाटी पुलिस थाने की एक शाखा भी है। समतल भूमी से प्रायः ७०० फुट ऊँचा होने के कारण एवं सुप्रसस्त ब्रह्मपुत्र नद पर्वत के पादमूलो को प्रक्षालित कर प्रवाहित होने के कारण इस उपत्यका की आबोहवा नातिशीतोष्ण है। शीत काल में प्रातः काल चारों ओर कुहासाछन्न होने के कारण शोत का प्रकोप खूब अधिक नहीं होता। सूर्य्योदय होते होते कुहासा फट जाता है और पर्वत बालरबि की सुनहरी किरणों से उद्भासित हो उठता है। सन्ध्या समय भी शोत का प्रकोप अधिक नहीं होता। आश्विन से चैत के बीच तक शोत रहता है। शींतकाल में यह स्थान आरामप्रद है। वैसाख से जेठ के मध्य तक ग्रीष्मकाल रहता है। ग्रीष्म काल में दिन बढ़ने के साथ साथ नद की ओर से शीतल वायु स्थल की ओर प्रवाहित होती है अतः ग्रीष्म में धूप का प्रकोप अधिक नहीं मालूम होता। पर्वत के ऊपर सर्वत्र आम, कटहल, नारियल इत्यादि के वृक्ष होने के कारण स्थान स्वभावतः छाया शीतल है। चैत से बीच बीच में वर्षा भी हुआ करती है। आषाढ़ से भादो तक वर्षा की प्रबलता रहती है। कभी कभी दीर्घ विलम्बी बृष्टि कृत पूञ्जिभूत जल निम्नगमन काल में जल प्रपातों की भी सृष्टि करता है। वर्षा काल में पर्वत हरितिमा छटा से छविभूत हो उठता है। एवं चारों ओर पर्वत शृङ्गों पर झूमते हुए

बादल उसे और भी विभूषित करते हैं। आकाश में भी सर्व्वदा मेघ प्राचूर्य होने के कारण पर्वत एवं मेघ विश्लेषण में कभी कभी भ्रान्ति हो जाती है। मेघ मालाओं से होकर सूर्य किरणों के प्रति फलित होने के कारण इन्द्र धनुषादि नयनाभिराम दृश्यों की सृष्टि हो जाता है। चारों ओर स्वप्न के साम्राज्य की सी कलित छटा छाई रहती है। दुःखों और क्लेशों की मात्रा नहीं के बराबर है। स्थान मनोरम एवं स्वास्थ्यकर है। यहाँ एक मात्र असुविधा पानी की है। यहाँ कई एक छोटी पोखरिया एवं झरने हैं। इन्हीं सब का जल सब कामों में व्यवहृत होता है।

वर्षा काल में झरने खूब चलते हैं परन्तु शीत और ग्रीष्म काल में क्षीण श्रोत हो जाते हैं। छोटी छोटी पोखरियों का जल भी सूख जाता है; जिससे प्रायः ६ महीनों से भी अधिक समय तक अधिवासियों को जल का पूरा कष्ट होता है। परन्तु वर्तमान भारत सरकार व प्रान्तीय सरकार अभी पथ, घाट, जल, रोशनी, (इलेक्ट्रीक लाईट) आदि स्वस्थ नागरिक जीवन के लिए जो कुछ साधन आवश्यकीय है उन सब साधनों की पूर्ति के लिए प्रयत्न कर रही है, यह अति प्रसन्नता की बात है। इससे स्थानीय निवासी एवं बाहर से आने वाले तीर्थ यात्रियों को सुविधा होगी।

पर्वत के ऊपर समतल स्थान में कामाख्या मन्दिर के निकट ही नाना प्रकार की मिठाइयां, पूजोपकरण; आसाम का प्रसिद्ध एण्डी मुंगा, शिल्क, काँसा आदि की सुसज्जित दुकानें हैं।

इसके अतिरिक्त नित्य व्यवहार की शाक सब्जी मत्स्यादि वस्तुओं के लिये प्रति दिन एक बजार भी लगता है।

नीलाचल पर्वत में विभिन्न स्थानों में अध्यात्म विद्या के अनुशीलन के लिये कई आश्रमादि हैं। यथा पाण्डुनाथ मन्दिर के निकट वराहपर्वत के ऊपर ऊँ बाबा का आश्रम, कामाख्या पर्वत के ऊपर अभयाश्रम; भूवनेश्वरी शृंग के पूर्व कालीपुर आश्रम और उत्तर में उमाचल आश्रम हैं जिन में कालीपुर आश्रम ही सर्वजनित एवं सुप्रसिद्ध है।

आसाम का प्रसिद्ध गौहाटी शहर

गौहाटी कामाख्या से दो मील पूर्व अवस्थित है इसका प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर है। यही कामरूप जिला का
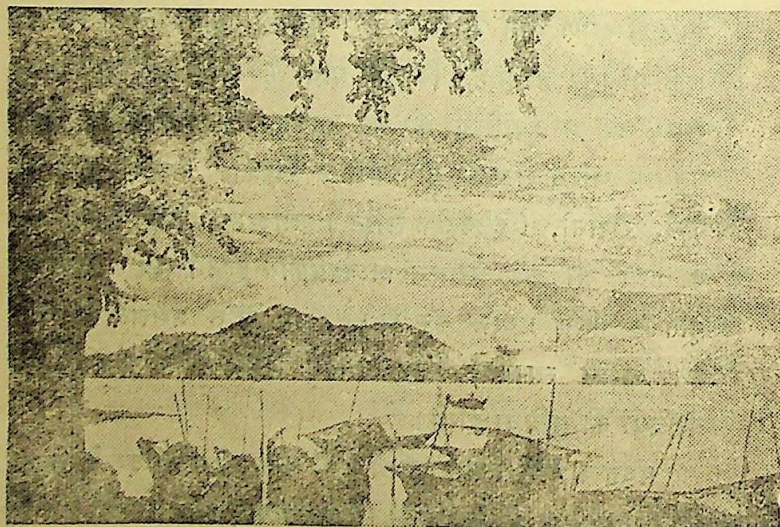
(गोहाटी से नील पर्वत का दृश्य)

प्रधान शहर है। ब्रह्मपुत्र नद के तटावस्थ होने के कारण यह आसाम का एक प्रसिद्ध वाणिज्य केन्द्र हो गया है। आजकल यहाँ गौहाटी विश्व विद्यालय को प्रतिष्ठा हुई है। इस शहर में नगर जीवनोपयोगी शिक्षा व्यवसाय ; स्वास्थ्य एवं आमोद प्रमोद इत्यादि की सुव्यवस्था है। यहाँ इस पुस्तक में उल्लेखित कामरूप के प्राचीन कीर्ति एवं तीर्थ स्थानादि इस शहर के चारों ओर अवस्थित है। यह शहर चारों ओर से पहाड़ों से वेष्ठित है। यह ब्रह्मपुत्र नद के तीरवर्त्ती उपत्यका पर आधुनिक रूचि सम्मन्त रूप से निर्मित गौहाटी शहर मानो प्रकृति के अंक में सभ्यता का निकेतन है।

आसाम की राजधानी 'शिलंग'

आसाम की राजधानी 'शिलंग' गौहाटी से ६४ मील दक्षिण
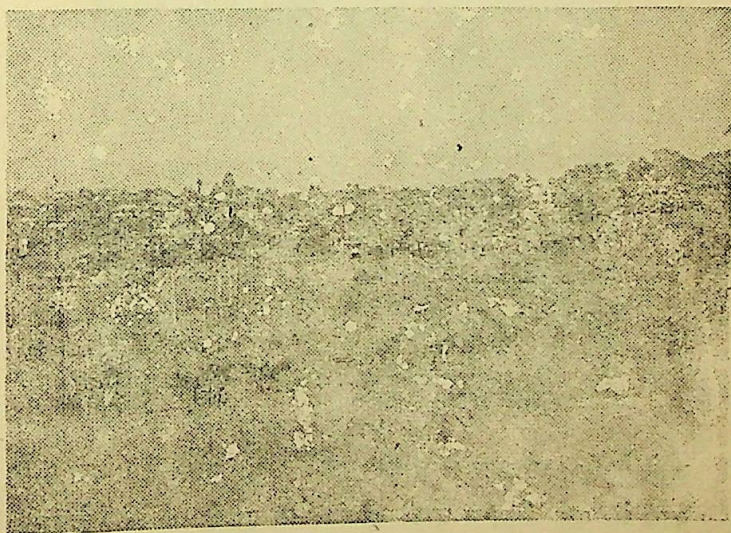
(शिलंग की रंग भूमि—"पलो ग्राउण्ड")

खासिया पर्वत के गगनचूम्बी शृंगों के उपर अवस्थित है। इसे पर्वत्य नगरी भी कहा जा सकता है। इसकी उचाई प्राय: ५००० हजार फुट है। शिलंफिक नामक चोटी करीब ६४५० फुट ऊँची है। शिलंग शीतकर एवं स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहां
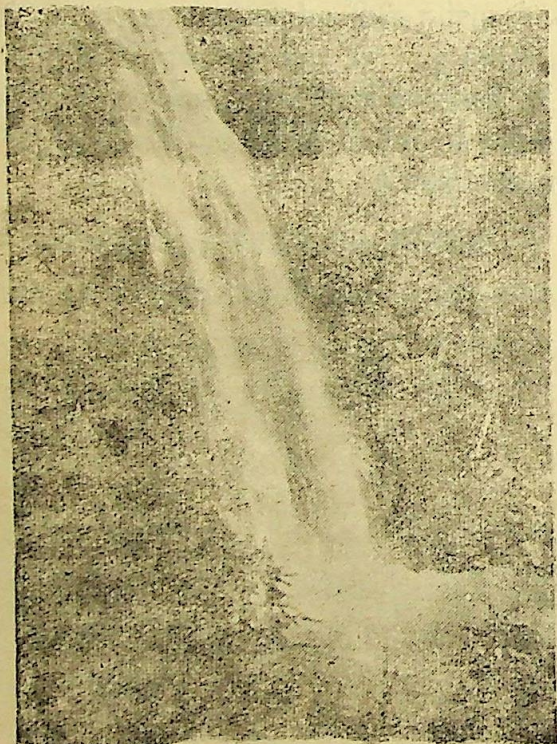
(जल प्रपात विशप)

जाने के लिए गौहाटी से मोटर द्वारा जाया जाता है। वर्त्तमान काल में एक विमान घाटी भी स्थापित हुई है। टेढ़े-मेढ़े रास्ते एक ओर ऊँची चोटी दूसरी ओर महान गर्त देख कर मन

घबड़ा उठत है। आसाम प्रकृति का रम्यकानन किस तरह सुशोभित है इसकी उपलब्धि मार्ग वर्ती दृश्यों को देख कर आसानी से हो सकती है। रास्ते में नाना प्रकार के वृक्ष; लतायें झरने अति मनोहर लगते हैं। शिलांग के निकट पहुंचने पर पाइन वृक्षों के अलावे अन्य वृक्षों के कम दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के फल एवं फूल इसकी शोभा बढ़ाते रहने के कारण यह देवपुरी सा लगता है। पर्वत के ऊपर बिड़न; विशप, एलिफेन्ट नामक कई जल प्रपात हैं। इन झरनों से 'हाइड्रो एलेक्ट्रसीटी' पैदा कर शहर को अलोकित किया जाता है। जल वितरण में भी इससे काफी मदद मिलती है।

यहाँ इस प्रान्त (आसाम) के गवर्नर रहते हैं, तथा अन्यान्य बड़े बड़े कार्यालयों के रहने के कारण यह स्थान अति प्रमुख है।

इस पर्वत भूमि पर उत्पन्न कमला निम्बू (नारंगी) नास्पति विभिन्न प्रकार के फल, आलू, मूली, शाक दर्विका (कोवी) आदि प्रचूर प्रमाण में दूर दूर भेजे जाते हैं।

समाप्त

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या		पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२२	....	१२	निदिया	नदीयां
६४	....	५	देवी	देवि
६४	...	६	देवी	देवि
६६	...	१८	देवी	देवि
६८	...	२१	रुपधारिणिम्	रुपधारिणीम्
६९	...	५	पापानी	पापानि
७६	....	१८	कामरुपीणिम्	कामरुपिणीम्
८३	...	७	अमोधि	अमोणि
९३	...	६	तीर्थेश्वरी	तीर्थेश्वरि
९६	...	१८	देही	देहि
१०६	....	१४	अशोत काष्टम्या तिथो	अशोकाष्टाम्यां तिथौ
१०६	....	१४	आजन्मार्ज्जिश	आजन्मार्ज्जित
१०६	...	१६	सयान	स्नान
१०६	...	१७	कामरुया	कामनया
१११	...	३	अकार	ईकार
१११	....	२१	मागे	भागे
१११	...	२२	सकल गुण पुया	सकल गुणयुक्ता
११२	.	६	तं	त्वं
११३	...	१ नम्बर १	कोर्ट्टरी	कोट्टरी
१५६	...	४९ नम्बर २	वालेश्वर	वा नकुलेश्वर

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या		पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२२	....	१२	निदिया	नदीयाँ
६४	....	५	देवी	देवि
६४	...	६	देवी	देवि
६६	...	१८	देवी	देवि
६८	...	२१	रुपधारिणिम्	रुपधारिणीम्
६९	...	५	पापानी	पापानि
७६	....	१८	कामरुपीणिम्	कामरुपिणीम्
८३	...	७	अमोघि	अमोणि
९३	...	६	तीर्थेश्वरी	तीर्थेश्वरि
९६	...	१८	देही	देहि
१०६	....	१४	अशोत काष्टम्या तिथो	अशोकाष्टाम्यां तिथौ
१०६	....	१४	आजन्मार्जिंजंश	आजन्मार्जित
१०६	...	१६	सयान	स्नान
१०६	...	१७	कामरुया	कामनया
१११	...	३	अकार	ईकार
१११	....	२१	मागे	भागे
१११	...	२२	सकल गुण पुया	सकल गुणयुता
११२		६	तं	त्वं
११३	...	१ नम्बर १	कोर्ट्टरी	कोट्टरी
१५६	...	४९ नम्बर २	वालेश्वर	वा नकुलेश्वर

———